गांधीवाद : एक और समीक्षा

भगवान् श्री रजनीश

गांधीवाद :
एक और समीक्षा

गांधीवाद : एक और समीक्षा

भगवान् श्री रजनीश

सम्पादन :
स्वामी आनंद मैत्रेय
स्वामी नरेन्द्र बोधिसत्व

प्रकाशक :
मा योग लक्ष्मी
रजनीश फाउंडेशन
श्री रजनीश आश्रम
पुणे 411 001
महाराष्ट्र

प्रथम संस्करण :
2 अक्तूबर 1974

मूल्य : रु. 5.50

मुद्रक :
बा. गो. थोरात
संगम प्रेस लिमिटेड
17 ब कोथरूड
पुणे 411 029

यह समीक्षा क्यों ?

"मेरा गांधी से कोई विरोध नहीं है । बहुत प्रेम है । और इसलिए रोज-रोज वे मेरे रास्ते में आ जाते हैं । मुझे उनकी बात करनी अत्यन्त जरूरी मालूम पड़ती है । क्योंकि इन सौ वर्षों में भारत के राष्ट्रीय आकाश में उनसे ज्यादा चमकदार कोई सितारा पैदा नहीं हुआ । उस सितारे पर आगे भी सोचना और विचार जारी रखना अत्यन्त आवश्यक है । लेकिन जहां उनसे मेरा विचार-भेद है, वहां मैं निवेदन जरूर करना चाहता हूं ।"

■■

"मैं गांधी के अवैज्ञानिक चिन्तन का स्पष्ट रूप से विरोध करता हूं । और यह विरोध करना इसलिए भी जरूरी हो रहा है कि गांधी इतने महिमाशाली व्यक्ति हैं कि उनकी भूलें और नासमझियां और उनकी झक और उनके फैड, सब हमारे दिमाग में पकड़ जाएंगे । इसका पूरा खतरा है । वे जो कहेंगे, वे जो करेंगे, वह हमें प्रीतिकर लगने लगेगा । वे आदमी ही इतने प्रीतिकर हैं । इसलिए बड़ी लड़ाई की जरूरत है कि हम उनके विचार को समझें और देखें कि वह

विचार देश को आगे ले जानेवाला सिद्ध होगा कि पीछे ले जानेवाला सिद्ध होगा । और अगर हमें दिखाई पड़ता हो कि पीछे ले जानेवाला सिद्ध होगा तो गांधी को पूरी तरह प्रेम करते हुए, गांधी की महिमा के लिए पूरी तरह सम्मान देते हुए, गांधी की सेवाओं के लिए पूरा सत्कार देते हुए, गांधी के उन हिस्सों से देश को बचाना पड़ेगा जो देश को अंधकार में ले जा सकते हैं और गर्त में गिरा सकते हैं ।"

■■

"मेरी दृष्टि में जीवन में शान्ति हो और अन्तस्तल पर प्रेम का उद्‍घाटन हो तो आदमी जो भी करता है, वह सेवा है । और रास्ते पर बुहारी लगाना ही रचनात्मक नहीं है; आपकी खोपड़ी में बुहारी लगाना ज्यादा रचनात्मक है । मैं सिर्फ बोल नहीं रहा हूं । विचार से बड़ी और कोई रचना जगत में नहीं है । विचार से महीन, विचार से ज्यादा अद्‍भुत, विचार से ज्यादा शक्तिशाली कोई क्रान्ति नहीं है । क्योंकि मूलतः विचार के बीज ही हृदय में जाकर अन्ततः जीवन को, समाज को, रूपान्तरित करते हैं ।"

■■

भगवान् रजनीश के इन शब्दों के साथ गांधीजी पर उनके दो प्रवचनों और एक प्रेस-सम्मेलन के वक्तव्य को यहां हम पुस्तक का रूप दे रहे हैं । गांधी-जन्म-शती के अवसर पर, 1969 में, "अस्वीकृति में उठा हाथ" प्रकाशित हुआ था । ये

दो प्रवचन भी उसी वर्ष, 14 फरवरी 1969 को, बड़ौदा में दिये गए थे । प्रेस सम्मेलन भी बड़ौदा मे ही एक दिन पहले हुआ था । गांधीजी की 105 वीं जन्म-जयन्ती के अवसर पर यह पुस्तक पाठकों के हाथ में हम इस आशा से धरते हैं कि इससे भारत में पूर्वाग्रह-मुक्त और निर्भीक चिन्तन की नींव मजबूत हो सकेगी ।

श्री रजनीश आश्रम,
पुणे 411001 (महाराष्ट्र)
3 सितम्बर 1974

स्वामी आनन्द मैत्रेय
स्वामी नरेन्द्र बोधिसत्व

गांधी का चिन्तन अवैज्ञानिक है

मेरे प्रिय आत्मन,

गांधीजी के सम्बन्ध में मेरी जो दृष्टि है, उसपर हम विचार करेंगे।

जीवित की हत्या और मृत की पूजा क्यों ?

जिन्दा आदमी को मार डालो और मरे हुए आदमी की पूजा करो; ये दो तरकीबें हैं। ये छूटने के रास्ते हैं, ये बचने के रास्ते हैं।

फिर पूजा भी हम उसी की करते हैं, जिसे हमने बहुत सताया है। पूजा मानसिक रूप से पश्चाताप है। **वह प्रायश्चित है।** जिन लोगों को हम जीते जी सताते हैं, उनके मरने के बाद पूरा समाज उनकी पूजा करता है; ऐसे प्रायश्चित करता है। वह जो पीड़ा दी है, वह जो अपराध किया है, वह जो पाप है भीतर, उस पाप का प्रायश्चित चलता है। तो हजारों साल तक पूजा चलती है। यह पूजा किये गये अपराध का प्रायश्चित है। लेकिन वह भी अपराध का ही दूसरा हिस्सा है।

गांधी को जिन्दा रहते सतायेंगे, न सुनेंगे उनकी, लेकिन मर जाने पर हम हजारों साल तक पूजा करेंगे। यह गिल्टी कान्शेंस, यह अपराधी चित्त का हिस्सा है यह पूजा।

और फिर इस पूजा के कारण हम सोचने-विचारने को राजी नहीं होंगे। पहले भी हम सोचने-विचारने को राजी नहीं होते। गांधी जिन्दा हैं तो हम सोचने-विचारने को राजी नहीं हैं। तब हम गालियां देते रहे। पत्थर मारकर, गोली मारकर दीवार खड़ी करेंगे कि अभी बातें सोचनी न पडें। फिर जब वह मर जायेंगे, तब भी हम सोचने-विचारने को राजी

नहीं हैं । तब हम पूजा की दीवार खड़ी करेंगे, और कहेंगे, अब सोचना-विचारना उचित नहीं है, अब तो पूजा करनी काफी है ।

मुझे गांधी से बहुत प्रेम है

महापुरुषों को या तो गोली मारते हैं हम या फूल चढ़ाते हैं, लेकिन महापुरुषों पर सोचते कभी भी नहीं हैं ।

मेरा गांधी से कोई विरोध नहीं है । **बहुत प्रेम है** । और इसलिए रोज-रोज वे मेरे रास्ते में आ जाते हैं । **मुझे उनकी बात करनी अत्यंत जरूरी मालूम पड़ती है; क्योंकि इन वर्षों में भारत के राष्ट्रीय आकाश में उनसे ज्यादा चमकदार कोई सितारा पैदा नहीं हुआ** । उस सितारे पर आगे भी सोचना और विचार जारी रखना अत्यन्त आवश्यक है । लेकिन जहां मेरा उनसे विचार-भेद है, वहां मैं निवेदन जरूर करना चाहता हूं । दो-तीन बिन्दुओं को समझाना चाहूंगा ।

पर उनके विचार अवैज्ञानिक हैं

पहली बात : गांधी का विचार वैज्ञानिक नहीं है, अवैज्ञानिक है ।

गांधी का विचार नैतिक तो है, लेकिन वैज्ञानिक नहीं है, साइंटिफिक नहीं है । गांधी का व्यक्तित्व ही, गांधी के व्यक्तित्व में चीजों को समझने की जो प्रतिभा थी, वह प्रतिभा ही वैज्ञानिक नहीं थी ।

गांधी जिन दिनों शिक्षा के लिए इंगलैंड गये, तो यूरोप की हवाओं में बड़ी क्रान्ति की बातें थीं । डार्विन का 'ओरीजन आफ स्पेसीज' किताब छप गयी थी । सारे पश्चिम के जगत में डार्विन की चर्चा थी, विकासवाद की चर्चा थी । विकासवाद ने एक भारी धक्का पहुंचा दिया था दुनिया के पुराने विचार को । अब दुनिया का विचार कभी भी वही नहीं हो सकता था, जो डार्विन के पहले था । लेकिन गांधी पर डार्विन के विचार का कोई परिणाम नहीं हुआ । मार्क्स की 'डास कैपिटल' छप चुकी थी । एक नयी क्रान्ति, समाज व्यवस्था, अर्थ-व्यवस्था में, हवा में आ गयी थी । चारों तरफ चर्चा थी । लेकिन गांधी पर मार्क्स के चिन्तन का कोई संस्कार नहीं हुआ । जहां गांधी थे इंगलैंड में, वहां फेबियन सोसाइटी

निर्मित हो चुकी थी । समाजवाद की न मालूम कितने रूपों में, हवा में खबर थी – साइमन, पूरिए, ऑबेन, बर्नाड शा, इन सबकी चर्चा थी हवा में । लेकिन गांधी पर उसका भी कोई प्रभाव नहीं पड़ा ।

पश्चिम में विज्ञान नयी क्रान्ति कर रहा था धर्म के विरोध में । पुराने धर्म की सारी परम्परा क्षीण होकर गिर रही थी; चर्च, मन्दिर टूट रहा था । एक नया तर्कयुक्त, एक नया विचारपूर्ण भविष्य पैदा हो रहा था । गांधी पर उसका भी कोई प्रभाव नहीं हुआ । गांधी पर प्रभाव किस बात का हुआ, आपको पता है ? वैजीटेरियनिज्म का । गांधी पश्चिम की क्रान्ति के उस वातावरण में कौन से विचार से प्रभावित हुए ? वेजीटेरियनिज्म से, शाकाहारवाद से । गांधी का चित्त वैज्ञानिकता से जरा भी, कभी भी, संबंधित नहीं हो सका । जीवन भर उनका चिन्तन नैतिक तो रहा, लेकिन वैज्ञानिक नहीं रहा । और गांधी का हिन्दुस्तान में जो भी प्रभाव दिखाई पड़ा, वह भी इसी कारण कि गांधी नैतिक विचारक हैं, वैज्ञानिक नहीं । हिन्दुस्तान हजारों साल से अवैज्ञानिक होने की आदत में दीक्षित रहा है । हिन्दुस्तान ने हजारों साल से कभी वैज्ञानिक ढंग से नहीं सोचा । **हिन्दुस्तान में इसीलिए विज्ञान का जन्म नहीं हो पाया** ।

पचास पीढ़ियों की अवैज्ञानिकता

हिन्दुस्तान के पास प्रतिभा की कमी नहीं है । हिन्दुस्तान के पास बुद्ध, दिग्नाग, नागार्जुन और शंकर जैसे अद्भुत प्रतिभाशाली लोग हुए हैं, लेकिन हिन्दुस्तान के पास एक भी आइन्स्टीन, एक भी डार्विन नहीं पैदा हुआ । भारत की प्रतिभा ही पचास पीढ़ियों से, सौ पीढ़ियों से अवैज्ञानिक रही है । तीन हजार वर्षों के लम्बे इतिहास में भारत ने वैज्ञानिक प्रतिभा का कोई प्रमाण नहीं दिया है । भारत का सारा सोचना गैर-साइंटिफिक, बल्कि एंटी-साइंटिफिक,विज्ञान-विरोधी रहा है । इस चिन्तन की लम्बी परम्परा के कारण ही गांधी की अवैज्ञानिक विचारधारा को भी महत्व मिलना शुरू हुआ । गांधी ने कभी भी तर्कयुक्त ढंग से, तथ्ययुक्त ढंग से नहीं सोचा ।

बिहार में भूकम्प हुआ था तो गांधी के अवैज्ञानिक चिन्तन ने क्या

कहा था ? कहा था कि बिहार में इसलिए भूकम्प हुआ कि वहां के हरिजनों के साथ जो अत्याचार हुआ है, उसका फल मिल रहा है। बड़ी अजीब-सी बात उन्होंने कही। बिहार के हरिजनों के साथ किये गये अत्याचार का फल मिल रहा है बिहार के लोगों को। और हिन्दुस्तान भर में अत्याचार नहीं हो रहा है हरिजनों के साथ ! और अगर हरिजनों के अत्याचार के कारण भूकम्प आए, अकाल पड़े, तो हिन्दुस्तान में अन्न का एक भी दाना कभी पैदा नहीं होना चाहिए, इतना अत्याचार हो चुका है। लेकिन यह सिर्फ बिहार में क्यों हुआ ? बिहार में ही अत्याचार हो रहा है हरिजनों के साथ ?

नहीं, लेकिन अवैज्ञानिक चिन्तन का कोई हिसाब नहीं है। गांधी को कोई बात ठीक लगे तो वह कहेंगे, मेरी अन्तर्वाणी कह रही है। अन्तर्वाणी आपकी कुछ भी कह सकती है। आपकी अन्तर्वाणी किसी चीज के सही होने का सबूत नहीं है। और अगर इस तरह हर आदमी की अन्तर्वाणी सबूत बन जाए तो मुल्क एक पागलखाना हो जायेगा। मैं भी कहूंगा, मेरी अन्तर्वाणी यह कह रही है, और आप कहेंगे, मेरी अन्तर्वाणी यह कह रही है। अन्तर्वाणी के कहने से कोई चीज सत्य नहीं होती। **सत्य होने के लिए उसे तथ्यगत् और वैज्ञानिक होना पड़ेगा।** सत्य होने के लिए उसे सब के तर्क को अपील हो सके, सब के तर्क और बुद्धि को समझ में आ सके, ऐसा होना पड़ेगा। लेकिन गांधी को इतना काफी है। उन्हें कोई बात ठीक लगती है, वे कहेंगे मुझे ईश्वर की वाणी कह रही है।

ईश्वर की वाणी किसी से कुछ भी नहीं कहती। हमेशा अपने ही अचेतन चित्त की आवाज सुनायी पड़ती है। हमारा भीतर का मन हमसे कुछ कहता है। लेकिन मेरे भीतर का मन कुछ कहे, इस कारण वह सत्य नहीं हो जाता है कि मेरे भीतर के मन ने कहा है। और मेरे लिए सत्य हो भी सकता है, लेकिन दूसरे के लिए सत्य कहने का हकदार मैं नहीं हूं। लेकिन गांधी जीवन भर यह कहेंगे कि मेरी अन्तर्वाणी यह कह रही है। और उनकी अन्तर्वाणी कहेगी और अगर वे उपवास करेंगे और अनशन करेंगे, तो पूरे मुल्क को भी मानना पड़ेगा कि वे जो कह रहे हैं, वह ठीक कह रहे हैं।

नहीं, गांधी के इस अन्तर्वाणी के सिद्धान्त ने भारत के चित्त को बहुत नुकसान पहुंचाया है, क्योंकि इससे अवैज्ञानिकता बढ़ती है। एक आदमी की अन्तर्वाणी कहती है कि आन्ध्र प्रदेश अलग होना चाहिए, और वह अनशन कर देता है। और अन्तर्वाणी को मानना ही पड़ेगा। और अगर हम अन्तर्वाणियों को इस तरह मानकर चलें तो हिन्दुस्तान की क्या गति होगी ? लेकिन गांधी जैसे बड़े व्यक्ति ने अन्तर्वाणी को इतना बल दिया—तर्क को नहीं, विचार को नहीं, सोच-विचार को नहीं, डायलाग को नहीं, कि हम विचार करें और तय करें। नहीं, उनकी अन्तर्वाणी जो कहती है, वह उन्हें सत्य मालूम पड़ता है।

दबाव भी हिंसा है

फिर उस सत्य के लिए वे दबाव डालते हैं, और उस दबाव को हम समझते हैं, वह अहिंसा है। दबाव किसी भी स्थिति में अहिंसा कभी नहीं होता।

चाहे दबाव किसी भी रूप का हो, **दबाव हमेशा हिंसा है।**

मैं आपकी छाती पर छुरा लेकर खड़ा हो जाऊं तो यह भी हिंसा है। और मैं आपके दरवाजे पर अनशन करके बैठ जाऊं तो यह भी हिंसा है। मैं आपको हर हालत में दबा रहा हूं। और कई बार छुरे का भय उतना नहीं होता, जितना कोई आदमी द्वार पर आकर मर जाए उसका भय होता है। और गांधी जैसा भला आदमी अगर मरने लगे तो हम गलत भी होंगे तो भी झुक जायेंगे कि चलो ठीक है। इस आदमी को मरने नहीं देना चाहिए, इतना बहुमूल्य आदमी है। लेकिन गांधी की अवैज्ञानिकता के कारण उनको यह भी नहीं सूझता है कि दबाव, सभी तरह का, हिंसा होती है। चाहे वह दबाव किसी तरह का हो, दबाव मात्र हिंसा है। चाहे आप छुरे से दबायें किसी को और चाहे आप मरने की धमके देकर दबायें। और मरने की धमकी देकर दबाना और भी खतरनाक है, क्योंकि दूसरा आदमी बिल्कुल निहत्था हो जाता है, वह उत्तर भी नहीं दे सकता। जब तक कि वह भी यही पागलपन न करे कि वह भी अनशन लेकर बैठ जाए और कहे कि मैं भी मर जाऊंगा।

मैंने सुना है, एक मजाक मैंने सुना है। एक युवक एक लड़की के पीछे दीवाना है। और उसके घर के सामने जाकर उसने अनशन कर दिया और कहा कि मेरी अन्तर्वाणी कहती है कि मैं तुमसे ही प्रेम करता हूं और तुमसे ही विवाह करूंगा। और अगर मुझसे विवाह नहीं करोगी तो मैं मर जाऊंगा अनशन करके। सारे गांव के अच्छे लोगों का समर्थन उस युवक को मिलना शुरू हुआ, क्योंकि उसने यह अहिंसात्मक अन्दोलन शुरू किया था। प्रेम के लिए यह पहली घटना थी। गांव के लोगों ने कहा, यह तो अहिंसात्मक बात है। यह आदमी धमकी तो नहीं दे रहा है। यह तो अपने को स्वयं न्योछावर कर रहा है, यह तो शहीद हो रहा है। घर के लोग बहुत घबड़ा गये। अगर वह छुरे से धमकी देता तो उससे लड़ा भी जा सकता था। सारे गाँव की नैतिक बुद्धि उसके पक्ष में थी। वे बहुत परेशान हुए। फिर उन्होंने गांव के एक पुराने अहिंसात्मक आन्दोलन करनेवाले बुड्ढे से सलाह ली कि क्या किया जा सकता है? उसने कहा, घबड़ाओ मत, रात हम इन्तजाम कर देंगे। रात वह एक बूढ़ी औरत को लेकर आया। और उस लड़के से उस बूढ़ी औरत ने आकर कहा कि मेरी अन्तर्वाणी कहती है कि मैं तुमसे विवाह करूं। और मैं अनशन शुरू करती हूं। रात में ही वह लड़का अपना बिस्तर वगैरह लेकर भाग गया। अब कोई उपाय नहीं था।

अन्तर्वाणियों पर तय नहीं किया जा सकता है कुछ। अन्तर्वाणियां खतरनाक हैं और देश को गड्ढे में ले जानेवाली हैं। क्योंकि आपकी अन्तर्वाणी आपकी अन्तर्वाणी है। और कौन है हकदार यह कहने का कि मेरी अन्तर्वाणी ईश्वर की आवाज है? यही तो आज तक दुनिया को नुकसान पहुंचाने वाला पथ रहा है।

मुहम्मद कहते हैं कि मेरी अन्तर्वाणी ईश्वर की आवाज है। वेद के ऋषि कहते हैं कि हमारी अन्तर्वाणी ईश्वर की आवाज है। सारी दुनिया के लोग यही दावा करते हैं कि हमारी अन्तर्वाणी ईश्वर की आवाज है। फिर झगड़े का कोई कारण नहीं रह जाता। सत्य तो निर्णीत हो गया। अब सत्य को निर्णय नहीं करना है। तर्क की कसौटी पर, प्रयोग की शाला में, दस आदमियों के बीच अब सत्य का निर्णय नहीं होना है।

सत्य पहले से ही निर्णीत हो गया। मेरी अन्तर्वाणी ईश्वर की आवाज है; यह बहुत खतरनाक बात है। यह बहुत अवैज्ञानिक बात है। और अगर यह फैल जाए तो मनुष्य को हितकर नहीं हो सकती। और फिर इस तरह की अन्तर्वाणी के लिए दबाव डालना और भी खतरनाक है।

नहीं, किसी भी तरह का दबाव अहिंसात्मक नहीं है। सब दबाव वायलेंस हैं, दबाव हिंसा है। और इसीलिए गांधी के सत्याग्रह और अनशन का परिणाम भारत के लिये अच्छा नहीं हुआ। सारा देश आज किसी भी टुच्ची बात पर सत्याग्रह करता है, किसी भी बेवकूफी की बात पर अनशन शुरू हो जाते हैं। सारा मुल्क परेशान है। गांधी जो तत्व दे गये हैं, वह मुल्क को भरमा रहा है और भटका रहा है और तकलीफ में डाल रहा है। और अगर वह बढ़ता चला गया तो हिंदुस्तान की नौका कहां डूब जायेगी, किन चट्टानों से टकराकर, कहना मुश्किल है। क्योंकि हिंदुस्तान की नौका तर्क के सहारे नहीं चल रही है, अबुद्धि के सहारे चल रही है। हिन्दुस्तान का विचार – विचार और विवेक – जाग्रत नहीं हो रहा है। हिन्दुस्तान में हर आदमी दावेदार हो गया है कि वह जो कह रहा है, वह सत्य है, और उसको मानना जरूरी है। यह बात हैरानी की मालूम होती है।

लेकिन जितने लोग भी गैर-साइंटिफिक ढंग से सोचते हैं, वे हमेशा अपने भीतर की आवाज को बल देना शुरू कर देते हैं।

पैगम्बर और परमात्मा

मैंने सुना है कि बगदाद में एक आदमी ने घोषणा कर दी कि मैं पैगम्बर हूं। अब इसका कोई निर्णय नहीं हो सकता है कि कौन आदमी पैगम्बर है, क्योंकि पैगम्बर खुद ही कहता है कि भगवान ने मुझे कहा है कि तुम पैगम्बर हो। बगदाद के खलीफा ने उसे पकड़ लिया, क्योंकि बगदाद का खलीफा पैगम्बरों के खिलाफ नहीं है, लेकिन मुहम्मद नाम के पैगम्बर से बंधा हुआ है। दूसरे पैगम्बर को वह बरदाश्त नहीं कर सकता। उसने पकड़ लिया उस पागल को और कहा कि तुम पागल हो। मुहम्मद के बाद अब किसी पैगम्बर की दुनिया में जरूरत नहीं है।

असली पैगम्बर हो चुका है, तुम्हारा दिमाग खराब है। अपना दिमाग ठीक करो, अन्यथा फांसी पर लटकने को तैयार हो जाओ। एक महीने का तुम्हें वक्त देते हैं। उसे जंजीरों से बांधकर कारागृह में डाल दिया।

पन्द्रह दिन बाद खलीफा उससे मिलने गया कि शायद अब वह दुरुस्त हो गया होगा। भूखा-प्यासा, जंजीरों में बंधा, उसपर कोड़े रोज पड़ रहे थे। फंदे से बंधा था वह आदमी। खलीफा ने जाकर कहा कि महाशय, बुद्धि दुरुस्त हो गयी हो तो बोलो, अब तो नहीं है यह खयाल कि तुम पैगम्बर हो ? उस आदमी ने कहा, अरे पागल खलीफा, यह तो मैं जब भगवान के पास से चलने लगा, उन्होंने जब मुझे पैगम्बर बनाने का आदेश दिया, तभी उन्होंने कहा था, पैगम्बरों को बड़ी तकलीफें झेलनी पड़ती हैं। हमेशा से पैगम्बरों को मुसीबतें झेलनी पड़ी हैं। मुसीबतों ने सिद्ध कर दिया है कि मैं पैगम्बर हूं। और अगर तुम मुझे मार डालोगे तो बिल्कुल पक्का सिद्ध हो जायेगा कि मैं पैगम्बर हूं, क्योंकि पैगम्बर हमेशा मारे जाते रहे हैं। लेकिन तभी सीखचों में बन्द एक दूसरा आदमी भीतर से चिल्लाया, खलीफा, यह आदमी झूठ बोल रहा है; मैंने इसे कभी भी पैगम्बर बनाकर नहीं भेजा। खलीफा ने कहा, आप कौन हैं ? वह आदमी दो महीने पहले पकड़ा गया था। उसको खुद परमात्मा होने का वहम था। वह कहता था कि मैं परमात्मा हूं। उसने कहा, यह आदमी बिल्कुल झूठ बोल रहा है, मैंने मुहम्मद के बाद किसी को भेजा ही नहीं। इस आदमी को मैंने कभी नहीं भेजा।

अब यह अन्तर्वाणियों का द्वन्द्व बड़ी मुश्किल बात है। कौन तय करे कि अन्तर्वाणी किसकी थी ? अन्तर्वाणी से समाज संचालित नहीं होते। हां, अगर किसी व्यक्ति को अपनी अन्तर्वाणी ठीक मालूम पड़ती है, तो वह अपने जीवन को जिस भांति संचालित करना चाहे करे। लेकिन जैसे ही वह दूसरे व्यक्ति से कोई बात कहता है, वैसे ही तर्क और विवेक और विचार की कसौटी पर बात कही जानी चाहिए। अन्यथा हम समाज को अन्धकार में ढकेल देंगे—अन्धे अन्धकार में, जहां कि पागलपन पैदा हो जायेगा।

भारत इस तरह की अन्तर्वाणी से बहुत दिन से बंधा आ रहा है।

इसीलिए भारत में विज्ञान पैदा नहीं हो पाया। **विज्ञान अन्तर्वाणियों से पैदा नहीं होता, विज्ञान विचार और तर्क से पैदा होता है।** गांधीजी ने फिर तर्क को बहुत नुकसान पहुंचा दिया। लेकिन वह हमें दिखायी नहीं पड़ता। क्योंकि हमारी परम्परा इतनी पुरानी हो गयी है अतर्क की, तर्क-विरोधी कि हमें खयाल में नहीं आता कि इस देश का सबसे बड़ा संकट क्या है ?

भारत का सब से बड़ा संकट क्या है ?

इस देश का सबसे बड़ा संकट है, एक वैज्ञानिक प्रतिभा का पैदा न हो पाना।

भारत में कोई वैज्ञानिक चिन्तन पैदा ही नहीं हो पाता। हमने कुछ भी ईजाद नहीं किया। हमने कोई आविष्कार नहीं किया, हमने प्रकृति के कोई छिपे हुए राज नहीं खोले। इसलिए हम दीन, दरिद्र और दुखी होते चले गये। गरीब होते चले गये, गुलाम होते चले गये। और आज भी जमीन पर हमारे पास क्या है ? आज जो भी शक्ति हमारे पास दिखायी पड़ती है, वह उधार है। हमारे पास अपनी कोई शक्ति नहीं है। हमारे पास अपनी कोई वैज्ञानिक बुद्धि नहीं है कि हम अगर दुनिया से टूट गये तो हम आज अपना विज्ञान विकसित कर लें। यह असंभव है। हम अपना विज्ञान विकसित नहीं कर सकते। जिनको हम वैज्ञानिक भी कहते हैं, बड़े इंजीनिअर, बड़े डॉक्टर, उनकी बुद्धि भी अवैज्ञानिक है; वे भी टेक्नीशियनस से ज्यादा नहीं हैं।

मैं कलकत्ते में एक डाक्टर के घर में मेहमान था। सांझ को जब मीटिंग में जाने के लिए वह डाक्टर मुझे लेकर बाहर निकलने लगे तो उनके बच्चे को छींक आ गयी। छींक आते ही डाक्टर ने कहा कि दो मिनट रुक जाइए। मैंने उनसे कहा, आप डाक्टर होकर यह कहते हैं कि रुक जाऊं ! आपको भली-भांति पता होना चाहिए कि छींक क्यों आती है ! डाक्टर को तो जानना चाहिए ? और आपकी लड़की को छींक आने से तीन काल में भी मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं क्यों रुकूं आपकी लड़की के छींक आने से ? डाक्टर ने कहा, वह तो मैं समझता हूं, लेकिन

फिर भी रुक जाने में हर्ज क्या है। दो मिनट बाद चले चलते हैं। यह अवैज्ञानिक भीतर से बोल रहा है। हर्ज क्या है, यह आदमी कहता है!

हर्ज बहुत बड़ा है। पूरे मुल्क की हत्या हो जायेगी। **अगर वैज्ञानिक चिन्तन पैदा नहीं होता है तो जिन्दगी की समस्याओं का सामना करने की हमारी क्षमता विकसित नहीं हो पाती।** हम छींकों से डरने वाले लोग हैं। बिल्लियां रास्ता काट जाएं और हम बैठ जायेंगे। इस तरह नहीं चलेगा।

अभी मैं जालन्धर था, एक बड़े इंजीनियर मित्र ने एक बड़ी कोठी बनायी। उसका उद्घाटन करने के लिए मुझको ले गये। बड़े इंजीनियर हैं, बड़ी शानदार कोठी बनायी। शायद वैसी कोठी दूसरी न होगी उस नगर में। जब उनकी कोठी का फीता काट रहा था, तो मैंने देखा सामने ही कोठी के दरवाजे पर एक हण्डी लटकी है, हण्डी में आदमी का चेहरा बना है, बाल लटके हैं। मैंने पूछा, यह क्या है? वह इंजीनियर हंसने लगे और कहने लगे, मकान को नजर न लग जाए, इसलिए इसको लटकाना पड़ता है।

इन इंजीनियरों और इन डाक्टरों से क्यां देश में वैज्ञानिक प्रतिभा पैदा होगी? इन इंजीनियरों और इन डाक्टरों से देश में वैज्ञानिक प्रतिभा पैदा होगी! एक इंजीनियर भी हण्डी लटकाता है और सोचता है, इससे मकान को नजर नहीं लगेगी। फिर इंजीनियर के सारे प्रमाण-पत्रों को लगा दो आग और घर-घर हण्डियां लटका लो। और अपनी छातियों पर भी लटका लो, जिससे किसी को नजर न लग जाए। यह सारा मुल्क अवैज्ञानिक ढंग से जी रहा है और चिन्तन कर रहा है। असल में अवैज्ञानिक ढंग से कोई चिन्तन नहीं होता। सिर्फ अन्धा अनुगमन होता है। आदमी अन्धे की तरह पीछे चल पड़ता है। फिर कोई पूछता नहीं कि यह क्या हो रहा है और क्या नहीं हो रहा है।

गांधी अद्भुत व्यक्ति हैं, नैतिक दृष्टि से अद्भुत व्यक्ति हैं, चारित्रिक दृष्टि से अद्भुत व्यक्ति हैं। बहुत हिम्मत के आदमी हैं; जो उन्हें ठीक लगता है, वे उसे पूरी तरह करते हैं; अपनी पूरी जान लगा देते हैं, अपनी पूरी कुर्बानी दे देते हैं। उनके इस सारे प्रभाव के कारण उनके अवैज्ञानिक

चिन्तन का भी हमारे ऊपर प्रभाव पड़ गया है। **अच्छे आदमी कभी-कभी खतरनाक सिद्ध होते हैं।** क्योंकि अच्छा आदमी इतना प्रभावित कर लेता है कि उसकी गल्तियां दिखायी पड़नी मुश्किल हो जाती हैं। बुरा आदमी कभी भी अपनी गल्तियां किसी पर थोप नहीं सकता, क्योंकि बुरा आदमी दिखाई पड़ता है कि बुरा आदमी है। लेकिन अच्छा आदमी खतरनाक सिद्ध हो सकता है, क्योंकि अच्छा आदमी इतना अच्छा मालूम पड़ता है कि हमारे मुल्क को लगता है, कि वह जो भी कर रहा है, जो भी कह रहा है, जो भी सोच रहा है, वह सभी अच्छा होना चाहिए। और तब बहुत सी भूलें सारे देश की प्रतिभा में प्रविष्ट हो जाती हैं।

पीछे लौटने की बात अवैज्ञानिक है

गांधी की विचार-दृष्टि वैज्ञानिक नहीं है। इसी अवैज्ञानिकता का परिणाम है कि वह पीछे लौटने की बात करते हैं। कहते हैं, राम-राज्य। राम-राज्य की बातें करनी, आज तीन-चार हजार साल पीछे लौट जाने की बात करनी है। नासमझी की बात है। समाज को पीछे नहीं लौटाना है, आगे ले जाना है। लेकिन जितने भी अवैज्ञानिक बुद्धि के लोग हैं, वे सब पीछे लौटने की बात करेंगे। क्योंकि आगे तो विज्ञान विकसित होगा, आगे तो विज्ञान और बढेगा, आगे तो बुद्धि और विकसित होगी। आगे दुनिया में महात्माओं की जगह बहुत कम रह जाने की है। लेकिन पीछे की दुनिया में, जहां वैज्ञानिक चिन्तन का विकास नहीं हुआ था, जहां सब तरह के अन्धविश्वास घर किये थे, और सब तरह के जाल अन्धविश्वास ने बुनकर रखे थे, वहीं लौट जाने का मन होता है। राम की दुनिया में ऐसा क्या था, जिसके लिए आज हम समाज को लौट चलने के लिए कहें? क्या था ऐसा? ऐसी क्या बात थी, जिसके लिए राम-राज्य की चर्चा की जाए?

लेकिन अवैज्ञानिक बुद्धि हमेशा पीछे लौटने वाली बुद्धि होती है। वह कहती है, पीछे लौट चलो, पीछे लौट चलो। आगे जाने में भय लगता है, क्योंकि आगे और समस्याएं होंगी, जिनका सामना करने के लिए बुद्धि को विकसित करना पड़ेगा। उतनी बुद्धि को विकसित करने के

लिए जो तैयार नहीं है, वह कहेगा, पीछे लौट चलो। समस्या से ही भाग जाओ। न समस्या रहेगी, न बुद्धि को जन्मने का कारण रहेगा। लौट जायें अपनी गुफाओं में, बैठ जायें पीछे लौटकर। लौटते चलो उस समय तक, जब कि बन्दर पहली दफे जमीन पर उतरा था। और फिर वापस झाड़ों पर चढ़ जाओ, और चारह् ाथ-पैर से चलने लगो। वह बहुत अच्छा रहेगा, क्योंकि न वहां यंत्रों की जरूरत होगी, न वहां औद्योगीकरण की जरूरत होगी, न वहां किसी आदमी को किसी पर निर्भर रहने की जरूरत होगी – स्वावलम्बी। बन्दर बन जाए एक एक आदमी लौटकर तो बहुत अच्छा है।

लेकिन समाज ऐसे विकसित नहीं होता। और ये पीछे लौटने वाली चिन्तनाएं समाज को हित नहीं पहुंचातीं। क्या था राम के राज्य में, जिसकी इतनी चिन्ता, जिसके लिए पीछे लौटने की इतनी बात है? ऐसी क्या बात थी? और अगर ऐसा सुन्दर राज्य था वह और ऐसा स्वर्ण युग था तो आदमी उसे छोड़कर क्यों आ गया? आगे क्यों बढ़ आया?

आदमी हमेशा दुख को छोड़कर आगे बढ़ता है। सुख को छोड़कर कभी आदमी आगे नहीं बढ़ता है। यह ध्यान रहे, हम समाज की जिन स्थितियों से गुजर आये हैं, वे स्थितियां आज की स्थितियों से बदतर स्थितियां थीं, इसलिए समाज आगे बढ़ा है उससे; नहीं तो समाज उससे कभी आगे नहीं बढ़ता। समाज आगे बढ़ता इसलिए है कि जो पीछे था, वह इस योग्य नहीं रहा कि उसमें जिया जाए। समाज नये द्वार तोड़ता है, नये मार्ग खोजता है। लेकिन प्रतिगामी चित्त, अवैज्ञानिक चित्त हमेशा कहता है: पीछे लौट चलो। मनोविज्ञान में इस वृत्ति को कहते हैं रिग्रेस, पीछे गिर जाने की वृत्ति।

अगर एक जवान आदमी के घर में आग लग जाए और उस आग का सामना करने में उसकी बुद्धि जवाब दे दे, तो आपको पता है, वह आदमी क्या करने लगेगा? वह दरवाजे पर बैठकर ऐसा रोने लगेगा, जैसे कोई छोटा बच्चा हो। वह रिग्रेस कर गया। अब जवान होने की हिम्मत उसने छोड़ दी। अब वह बच्चा हो गया, वह रोने लगा। बच्चा जो करता मकान में आग लग जाने पर, वही वह कर रहा है। लेकिन रोने से कोई मकान की आग नहीं बुझती, और पीछे लौट जाने से कोई हल नहीं होता। हां, पीछे लौट जाने से एक सुविधा होती है, समस्या का सामना करने से बच जाने का उपाय मिल जाता है।

पीछे लौटना एस्केपिज्म है, पीछे लौटना पलायनवाद है।

नये की चुनौती चाहिए

जिन्दगी नयी समस्याएं खड़ी करती है। उनको हल करने की फिक्र करनी चाहिए, न कि पीछे लौट जाने की।

नये यन्त्रों ने नयी मुसीबत पैदा की है, यह सच है। हर नयी चीज नयी मुसीबत पैदा करती है। क्योंकि पुरानी व्यवस्था में बदलाहट करने की जरूरत आ जाती है। लेकिन हर नयी मुसीबत को झेल लेना, सामना करना, मनुष्य की प्रतिभा को विकसित करने का अवसर बनता है। और पीछे लौट जाने से मनुष्य की प्रतिभा का विकास तत्क्षण रुक जाता है।

क्या आपको पता है, एक आदमी बैलगाड़ी चलाता हो, तो इसके चित्त के बहुत विकास की जरूरत नहीं, है, उसकी कान्शसनेस बहुत विकसित नहीं होगी। आखिर बैलगाड़ी चलाने के लिए कितनी चेतना की जरूरत पड़ती है? लेकिन एक आदमी अन्तररिक्ष-यान चलाता हो, तो अन्तरिक्ष-यान चलाने के लिए बैलगाड़ी वाली बुद्धि काम नहीं दे सकती। उस आदमी की चेतना को विकसित होना पड़ेगा। उस आदमी को इस नये जटिल यन्त्र का सामना करने के लिए इतनी ही जटिल, इतनी ही सूक्ष्म बुद्धि भी विकसित करनी होगी। जितना यन्त्रों का विकास हो, उतनी मनुष्य की बुद्धि को चुनौती मिलती है विकसित होने के लिए।

गांधी कहते हैं, चर्खा पर लौट चलो, तकली पर लौट चलो। इससे मनुष्य की चेतना का विकास नहीं होगा। मनुष्य की चेतना का पतन होगा। मनुष्य की चेतना उत्पादन के साधनों के विकास के साथ विकसित होती है। **जितने साधन विकसित होते हैं, उतनी ही भीतर की चेतना को चुनौती मिलती है और वह विकसित होती है।** साधन छीन लो, और

चेतना अविकसित हो जायेगी ।

बंगाल के जंगलों में आज से बीस-तीस वर्ष पहले दो बच्चियां पकड़ी गयी थीं, जिनको भेड़िये उठाकर ले गये थे । भेड़िये उठाकर ले गये दो आदमियों की बच्चियों को । उन भेड़ियों ने उन्हें पाला । फिर शिकारियों ने उन्हें पकड़ लिया । उनकी दस और बारह साल के करीब उम्र थी, उन बच्चियों की । लेकिन उन बच्चियों में आदमी का कोई भी चिह्न न था । आदमी की चेतना का कोई भी लक्षण नहीं था । वे चार हाथ-पैर से चलतीं, भेड़ियों की तरह चिल्लातीं । मांस देखकर, कच्चे मांस को खा जातीं, आदमी पर झपट्टा मारतीं । बहुत हैरानी हुई कि आदमी की दो लड़कियां हैं, इनकी यह हालत हो गयी । भेड़ियों की जीवन-व्यवस्था में जीने पर जो चेतना विकसित होगी, वह आदमी की विकसित चेतना नहीं होगी, भेड़ियों की ही होगी ।

अभी दो-तीन वर्ष पहले उत्तरप्रदेश में भी एक लड़के को पकड़ा गया था जंगल में, जिसकी कोई चौदह या पन्द्रह साल की उम्र थी । उसे भी भेड़ियों ने पाला था । वह भेड़ियों जैसा हो गया था । उसे छः महीने लग गये सीधा खड़ा होना सिखाने में । दो पैर से खड़ा होना सीखने के लिए उसे छः महीने लग गये । एक शब्द बोलने के लिए, राम उसका नाम रख दिया था, राम बोलने के लिए उसे डेढ़ साल लग गया । डेढ़ साल में वह उच्चारण कर पाया राम । क्या हो गया इसकी चेतना को ? भेड़ियों की व्यवस्था में रहने पर इसकी चेतना भेड़ियों जैसी हो गयी है ।

सामाजिक विकास और चेतना का तालमेल

जितना विकसित समाज, जितनी विकसित यन्त्र–व्यवस्था, जितना विकसित विज्ञान, उतना मनुष्य की चेतना को विकसित होने को चुनौती मिलती है । मनुष्य के भीतर अनन्त संभावनाएं हैं विकास की, लेकिन चुनौती मिलनी चाहिए, चैलेंज मिलना चाहिए । गांधी जिस समाज की बात करते हैं, वह चैलेंज देने वाला समाज नहीं है । अपना कपड़ा बना लो, अपने चर्खे पर बुन लो, अपनी घर की खेती-बाड़ी कर लो, अपने झोपड़े में रह जाओ, राम भजन करो, और आराम से जियो – इससे

मनुष्य की चेतना को चुनौती नहीं मिलती ।

आदमी आगे क्यों बढ़ आया उन स्थितियों को छोड़कर ?

वह इसीलिए आगे बढ़ आया कि उन स्थितियों में आत्मा के विकास का अवसर नहीं था । **विश्व-चेतना मनुष्य की चेतना को विकसित करन के लिए तीव्र सन्देश दे रही है ।** ये यन्त्र आकस्मिक रूप से पैदा नहीं हो रहे हैं, ये परमात्मा के खिलाफ पैदा नहीं हो रहे हैं । यह परमात्मा की ही मर्जी होगी । मनुष्य का जो भी विकास हो रहा है, वह परमात्मा की मर्जी से हो रहा है । क्योंकि उसकी मर्जी के बिना और कुछ भी नहीं हो सकता । लेकिन, महात्मा गण परमात्मा की मर्जी के खिलाफ बहुत कुछ बातें करते रहते हैं । हालांकि उनकी कोई सुनता नहीं । समाज अपनी ही धारा से बढ़ता है। लेकिन थोड़ा बहुत विलम्ब वे जरूर पैदा कर देते हैं। उनका विलम्ब पैदा करना नुकसान का कारण हो जाता है ।

हिन्दुस्तान में पीछे लौटने और लौटाये जाने वाले लोगों की लम्बी परम्परा है । इन सन्तों-महात्माओं के कारण भारत की आत्मा विकसित नहीं हो पाती है । और भारत की आत्मा जब तक संतों-महात्माओं से मुक्त नहीं होती, तब तक भारत के पास एक वैज्ञानिक प्रतिभा का जन्म नहीं होगा, इसे सुनिश्चित मान लिया जाना चाहिए ।

तीन-चार हजार वर्ष से हम क्या कर रहे हैं ?

मैं गांधी के अवैज्ञानिक चिन्तन का स्पष्ट रूप से विरोध करता हूं। और यह विरोध करना इसलिए भी बहुत जरूरी हो रहा है कि गांधी इतने महिमाशाली व्यक्ति हैं कि उनकी भूलें और नासमझियां और उनकी झक और उनके फैड, सब हमारे दिमाग में पकड जायेंगे। इसका पूरा खतरा है । वे जो कहेंगे, वे जो करेंगे, वह हमें प्रीतिकर लगने लगेगा । वे आदमी ही इतने प्रीतिकर हैं। इसलिए बड़ी लड़ाई की जरूरत है कि हम उनके विचार को समझें और देखें कि वह विचार देश को आगे ले जाने वाला सिद्ध होगा कि पीछे ले जाने वाला सिद्ध होगा । और अगर हमें दिखायी पड़ता हो कि पीछे ले जाने वाला सिद्ध होगा **तो गांधी को पूरी तरह प्रेम करते हुए, गांधी की महिमा के लिए पूरा सम्मान देते हुए, गांधी की सेवाओं के लिए पूरा सत्कार देते हुए,**

गांधी के उन हिस्सों से देश को बचाना पड़ेगा, जो देश को अन्धकार में ले जा सकते हैं और गर्त में गिरा सकते हैं।

अगति में न्यस्त स्वार्थ

लेकिन यह बात कहनी बहुत मुश्किल हो गयी है। क्योंकि यह बात कहने का मतलब है कि न्यस्त स्वार्थों को, भेस्टेड इन्टरेस्ट को नाराज कर देना है। गांधी ने किसी पत्र में लिखा है कि मेरा वश चले तो मैं न टेलिग्राफ रहने दूं, न रेलगाड़ी रहने दूं। बड़े मजे की बात है। अगर गांधी का वश चले तो टेलीग्राफ, रेलगाड़ी इन सबको खत्म कर दें। तो आदमी कहां जाए ? आदमी हो जाए गुहा-मानव। गिर जाए पीछे अतीत के पतन में। हमें पता नहीं है कि इन सारे यन्त्रों ने भी बहुत कुछ मनुष्य की आत्मा को और धर्म को विकसित होने में सहयोग दिया है। हजारों समझाने वाले लोग नहीं समझा सके थे कि भंगी के पास बैठो, लेकिन रेलगाड़ी ने आपको भंगी के पास बिठा दिया। हजारों महात्मा नहीं समझा सके थे यह बात कि भंगी के पास बैठकर खाना खा लो, लेकिन रेलगाड़ी में बैठकर आपने भंगी के साथ खाना खा लिया है। लाखों महात्मा जो नहीं कर सके, वह एक मुर्दा रेलगाड़ी ने कर दिया है।

जिन्दगी बहुत अनूठे ढंगों से विकसित होती है। जिन्दगी के रास्ते बहुत अनूठे हैं। और रेलगाड़ी को बन्द कर देने का मतलव क्या है ? रेलगाड़ी का क्या कसूर है ? टेलीग्राफ का क्या कसूर है ? बड़े यंत्रों का, हवाई जहाज का क्या कसूर है ? एक कसूर है, और वह कसूर यह है कि विज्ञान जितना विकसित होता है, उतना मनुष्य का तर्क विकसित होता है; और जितना तर्क विकसित होता है, उतना अन्धविश्वास के आधार पर खड़े हुए सारे गढ़ गिरने शुरू हो जाते हैं। विज्ञान का विकास तथाकथित धार्मिक आदमी को भयभीत करता है। विज्ञान का सारा विकास तथाकथित धार्मिक आदमी को भयभीत करता है। क्योंकि उसकी सारी बुनियादें अतर्क पर, अन्धेपन पर, विश्वास पर खड़ी हैं। एक तरफ विज्ञान विकसित होगा, तो दूसरी तरफ यह अन्धविश्वास

पर खड़े हुए मन्दिर, इनके शिखर गिरने शुरू हो जायेंगे। इसलिए उचित यही है कि विज्ञान विकसित न हो। उचित यही है कि वैज्ञानिक बुद्धि विकसित न हो। उचित यही है कि मनुष्य का तर्क विकसित न हो। उचित यही है कि आंख बन्द करके आदमी अन्धे की तरह महात्माओं के पीछे चलता रहे। ताकि हजारों साल से जो भी कहा जा रहा है--चाहे वह ठीक हो, चाहे वह गलत हो– वह आदमी मानता चला जाए। आदमी को एक मानसिक गुलामी के लिए तैयार किया गया है। **विज्ञान ने वह गुलामी तोड़नी शुरू कर दी। इसलिए दुनिया भर के सन्त-महात्मा बुनियादी रूप से विज्ञान के विरोधी हैं।** विरोध वे अनेक-अनेक रूपों में करते हैं, जो खयाल में नहीं आता। और इतने व्यवस्थित ढंग से वह विरोध चलता है कि शायद उन्हें भी पता न हो कि वे क्या कर रहे हैं ?

संतति–नियमन का भी विरोध

अब हिन्दुस्तान की बढ़ रही आबादी है। विज्ञान कहता है, संतति–नियमन का उपयोग करो. बर्थ-कण्ट्रोल का उपयोग करो। विज्ञान ने एक अद्भुत बात खोज निकाली कि आदमी जन्म के ऊपर अधिकार रख सकता है। आदमी का पैदा होना आदमी के वश में है। लेकिन गांधीजी और विनोबाजी कहते हैं : संतति–नियमन ! इससे तो अनाचार फैल जायेगा। संतति – नियमन कभी नहीं, ब्रह्मचर्य का पालन करो। लेकिन पांच हजार वर्षों से तुम समझा रहे हो, कितने ब्रह्मचारी पैदा करवाये, और कब तक तुम इस बकवास को जारी रखोगे ? कभी हजार दो हजार आदमी में एक आदमी ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो जाता है। तो उससे हम नहीं कहते कि बर्थ-कण्ट्रोल का उपयोग करे, उससे कोई जबरदस्ती नहीं करते। लेकिन जो लोग नहीं उपलब्ध हो सकते हैं ब्रह्मचर्य को, इन सारे लोगों को ब्रह्मचर्य की आड़ में बच्चे पैदा करते रहने देना सारे समाज के लिए स्वीसाइड, आत्मघात सिद्ध होगा।

सारी दुनिया ने अपनी संतति पर नियमन पैदा कर लिया है। फ्रांस की संख्या थिर हो गयी है। जापान ने अपनी संख्या पर बहुत तीव्रता से

काबू पा लिया है। लेकिन भारत अपनी संख्या को पागल की हैसियत से बढ़ाये चला जा रहा है। हम सिवाय मरने के और कहीं भी नहीं पहुंचेंगे। लेकिन गांधी और विनोबा का अवैज्ञानिक चिन्तन कहेगा कि नहीं, संतति – नियमन, यह तो कृत्रिम उपाय है।

सब उपाय कृत्रिम हैं। उपाय मात्र कृत्रिम होते हैं। उपाय कोई आसमान से पैदा नहीं होते, आदमी ईजाद करता है। कृत्रिम उपाय का उपयोग मत करो, संयम रखो। लेकिन तुम्हारे संयम की शिक्षा का क्या फल है? तुम्हारे संयम की शिक्षा अगर दस हजार साल भी चले तो कोई परिणाम नहीं होने वाला है। और दस हजार साल में इस देश में कीड़-मकोड़ों की तरह आदमियों की भीड़ इकट्ठी हो जाएगी। इस भीड़ को जीना असंभव होगा, सिर्फ मरना ही आसान रह जाएगा। लेकिन आप मरोगे तो वह कहेंगे, इसमें हमारा क्या कसूर? हम तो कहते थे, ब्रह्मचर्य का पालन करो। तुमने नहीं किया, तुम मरो, तुम्हारी जिम्मेवारी है, तुम्हारी गलती है। लेकिन वैज्ञानिक साधनों का उपयोग मत करने देना। और बड़े मजे की बात, वे कहेंगे कि वैज्ञानिक साधनों का उपयोग करने में अनैतिकता बढ़ जाएगी, जैसे कि अनैतिकता बहुत कम है! अब और अनैतिकता क्या बढ़ जाएगी?

अनैतिकता काफी बढ़ गयी है, चरम सीमा पर पहुंच गयी है। कम से कम इस देश को तो अब और पतित होने का कोई और उपाय नहीं रह गया है। अब तो कोई बहुत ही इनवेंटिव माइंड पैदा हो, आविष्कारक, तो भी नहीं बता सकता कि और चरित्रहीनता के नुस्खे क्या हो सकते हैं। सब नुस्खे हमें पूरी तरह मालूम हैं। अब और क्या चरित्रहीनता होगी? लेकिन नहीं, वह अवैज्ञानिक बुद्धि नैतिकता की दलीलों को लेकर अपने अविज्ञान को छिपाये चली जाएगी। और हमको भी बातें अच्छी लगेंगी, क्योंकि उन बातों को सुनने की हमारी लम्बी आदत हो गयी है। जिस बात को हम बहुत बार सुनते हैं, बहुत बार सुनने के कारण वह सही लगने लगती है।

हिटलर ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि किसी भी झूठ को बारबार दोहराते रहो, धीरे-धीरे वह सच हो जाता है। बस झूठ को बारबार दोहराने की जरूरत है, वह सच हो जाएगा। असली सवाल बारबार दोहराने का है।

और हम तो हजारों साल से कुछ बातें दोहरा रहे हैं। इतनी बार हमने उनको दोहराया है कि वे सच हो गयीं हैं। और आज उन झूठी बातों को, जो सच दिखायी पड़ने लगी हैं, छोड़ना एक बड़ी मुश्किल बात हो गयी है। पहाड़ तोड़ना आसान हो गया; उन झूठी बातों को, जो सच नहीं हैं, तोड़ना बहुत मुश्किल हो गया है। लेकिन, अगर किसी को महात्मा बनना हो, तोड़ने की कोशिश ही नहीं करनी चाहिए। महात्मा बनने की सरल तरकीब यह है। और इस देश में महात्मा बनने से ज्यादा सरल और कोई भी चीज नहीं है। और कुछ भी बनना बहुत कठिन है, महात्मा बनना एकदम सरल है। और महात्मा बनने का रामबाण नुस्खा यही है कि जो भी नासमझी चलती रही हो, तुम उसका ही गुणगान जारी रखो। जो भी नासमझी चलती रही है, तुम उसकी ही हां में हां भरते रहो। समाज तुम्हें आदर देगा, क्योंकि तुम समाज की नासमझियों को आदर देते हो। समाज उत्तर में तुम्हारा सम्मान करेगा, क्योंकि तुम समाज का सम्मान करते हो। और अगर थोड़ी सी भी क्रान्ति की बात कही, कि जिन्दगी को बदलना जरूरी है, विचार को बदलना जरूरी है, तो तैयार रहो फिर। फिर महात्मा नहीं हो सकते, फिर साधु नहीं हो सकते।

हिन्दुस्तान ने एक तरकीब निकाली है। हिन्दुस्तान के सारे विचारशील लोगों को एक तरकीब से, एक रिश्वत देकर क्रान्ति से विमुख बनाया गया है। और वह रिश्वत यह है कि हम तुम्हें सम्मान देंगे, अगर तुम क्रान्ति की बात न करो। और अगर तुमने क्रान्ति की बात की तो अपमान के सिवाय और कुछ भी नहीं मिलेगा। इसलिए हिन्दुस्तान में सन्त-महात्मा पैदा हुए, क्रान्तिकारी पैदा नहीं हो सके हैं। **हिन्दुस्तान के पांच हजार साल के इतिहास में एक भी क्रान्ति नहीं हो सकी।** यह बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण मालूम पड़ता है। हमसे छोटे-छोटे मुल्क सौ दो सौ वर्षों में क्रान्ति कर लेते हैं, और हमने कोई क्रान्ति नहीं की। क्या हमारी आत्मा मर गयी है? क्या हम कोई भी बदलाहट करने में समर्थ नहीं रहे?

सुधारवाद और क्रान्ति भिन्न हैं

गांधी का चिन्तन भी सुधारवादी है, क्रान्तिवादी नहीं। यह दूसरा बिन्दु मैं आपसे कह देना चाहता हूं।

गांधी क्रान्तिवादी चिन्तक नहीं हैं, रिफॉर्मिस्ट, सुधारवादी चिन्तक हैं। अगर हिन्दुस्तान में अस्पृश्य चल रहा है, अछूत चल रहा है तो उसको अच्छा नाम दे देंगे; कहेंगे, हरिजन। वह यह नहीं कहेंगे कि हिन्दू धर्म सड़ा हुआ धर्म है। वह नहीं कहेंगे कि उस हिन्दू धर्म को लगा दो आग, जिस हिन्दू धर्म ने यह सब बेईमानी पैदा की। नहीं, वह कहेंगे, हिन्दू धर्म तो बहुत महान धर्म है। थोड़ी सी भूल हो गयी है, किसी तरह समझा-बुझा कर अछूत को निकट ले आओ, बीमारी जारी रहने दो। थोड़ी सी भूल रह गयी है, उसको सुधार लो। कहीं थोड़ा सा पलस्तर बदल दो, कहीं खिड़की बदल दो, कहीं रंग-रोगन बदल दो। समाज तो पुराना बिल्कुल ठीक है। गांधी क्रान्तिवादी नहीं हैं। वह कहेंगे, हिन्दू भी ठीक है, मुसलमान भी ठीक है, दोनों भाई-भाई हैं। जबकि दोनों बीमारियां हैं, कोई भाई-भाई नहीं हैं। न हिन्दू की जरूरत है, न मुसलमान की जरूरत है; **हिन्दुस्तान को आदमी की जरूरत है।** हिन्दू मुसलमान की बिल्कुल जरूरत नहीं है। लेकिन गांधी कहेंगे, हिन्दू-मुस्लिम भाई-भाई।

यह सुधारवादी, समझौतावादी दृष्टिकोण है। यह क्रांति ले आने वाला दृष्टिकोण नहीं है। वे कहेंगे कि दोनों ठीक हैं। वे कहेंगे कि अल्ला-ईश्वर तेरे नाम। भगवान का कोई भी नाम नहीं है। न अल्ला उसका नाम है, न ईश्वर उसका नाम है। वह अनाम है और सब नाम झूठे नाम हैं, आदमियों के दिए हुआ नाम हैं। लेकिन किसी झूठ को खोलने की वह हिम्मत नहीं जुटायेंगे। वे कहेंगे, तुम्हारा झूठ भी ठीक, तुम्हारा झूठ भी ठीक। झगड़ा मत करो, दोनों भाई-भाई हो।

भाई-भाई होकर–नतीजा हम देख रहे हैं, क्या हुआ ?

हिन्दुस्तान-पाकिस्तान कटा। और इस कटने में गांधीजी ने हिन्दू-मुसलमान को भाई-भाई बनाने की जो बात कही, वह बुनियादी आधार बनी। अगर हिन्दुस्तान के नेताओं ने, विचारशील लोगों ने हिन्दू और

मुसलमान को बीमारी कहा होता और हिन्दू और मुसलमान दोनों तत्वों के खिलाफ लड़ाई जारी रखी होती, तो हिन्दुस्तान के बंटवारे का कभी कोई सवाल नहीं उठ सकता था। देश भी बंट गया, बीमारी जारी है और हजारों साल तक वह बीमारी जारी रहेगी।

हिन्दुस्तान को वैसे क्रान्तिकारी लोग चाहिए, जो इसे बीमारियों से छुटकारा दिलायें, जो बीमारियों के साथ एडजस्ट होने की, समयोजित होने की बातें न करें। जो समझौते की बातें न करें, जो जिन्दगी को बदलने के लिए हिम्मत जुटायें।

और यह हिम्मत जुटानी हो तो गांधी के समझौतावादी रुख के खिलाफ सारे देश के मन में एक आवाज पैदा होनी अत्यन्त जरूरी है।

गांधी एक समझौतावादी हैं।

हिन्दुस्तान हमेशा से समझौतावादी रहा है। समझौतावादी होने से यह हमने सब खो दिया है। अब कब मौका आयेगा कि हिन्दुस्तान समझौतावादीपन की पुरानी आदतें छोड़ दे। वह हिम्मत से जो ठीक हो उसको करने की कोशिश करे। जो सही दिखायी पड़े, जो मुल्क के चिंतन में सही आये, उसके साथ समझौता न करे। क्योंकि समझौता करने वाली कौम धीरे-धीरे इम्पोटेंट, नपुंसक हो जाती है। उसका बल चला जाता है, उसका आग्रह चला जाता है, उसका वीर्य चला जाता है, उसकी लड़ने की क्षमता चली जाती है, उसकी बदलाहट की ताकत खो जाती है। वह सब खो गयी है।

गांधी और अहिंसा : एक विश्लेषण.

गांधी क्रान्तिकारी नहीं हैं। गांधी की जो बात बहुत क्रान्तिकारी मालूम पड़ती है, वह बात भी उतनी क्रान्तिकारी नहीं है, जितनी कि घोषणा की जाती है। गांधी कहते हैं कि अहिंसा––**और अहिंसा की बात सच में बड़ी क्रान्तिकारी है।** लेकिन गांधी के अनशन और सत्याग्रह को मैं अहिंसक नहीं मानता हूं। अगर कोई भी अनशन जाहिर रूप से किया जाए तो हिंसात्मक हो जाता है। अगर मुझे किसी व्यक्ति का हृदय-परिवर्तन करना है तो मौन में, एकान्त में बिना किसी को पता चले,

ध्यान में, समाधि में मुझे हृदय-परिवर्तन की प्रार्थना करनी चाहिए। अगर मैं बड़ौदा में घोषणा करके कि मैं फलां आदमी का हृदय-परिवर्तन करूंगा, अनशन करता हूं और सारा बड़ौदा मेरे अनशन के पास घूमता है, और अखबारों में खबरें छपती हैं तो मैं उस आदमी पर दबाव डाल रहा हूं। यह दबाव अहिंसात्मक नहीं है।

सत्याग्रह अहिंसात्मक हो सकता है, **लेकिन वह होगा मौन में, एकान्त में, अंधेरे में जहां किसी को पता भी न चले।** उस आदमी को भी पता न चले, जिसका हृदय-परिवर्तन करने की कोशिश कर रहा हूं। और तब उस मौन में भी हृदय बदले जाते हैं, उस मौन में भी हृदय से हृदय तक आवाज पहुंचायी जाती है। वह तो अहिंसात्मक हो सकता है।

लेकिन इस तरह के सत्याग्रह और अनशन अहिंसात्मक नहीं हैं; ये हिंसा के नये रास्ते हैं, नये रुख हैं। यह हिंसा की नयी तरकीब है।

नहीं, गांधी के द्वारा जो क्रान्ति हो गयी, वह अहिंसात्मक क्रान्ति नहीं है। और वह क्रान्ति सम्भव हो सकी, वह इसलिए नहीं कि भारत अहिंसात्मक आंदोलन कर रहा था, बल्कि भारत इतना कायर, इतना कमजोर और इतना निर्वीर्य हो गया है कि उसमें लड़ने की कोई हिम्मत नहीं रही। गांधी ने भी आजादी मिलने के बाद यह बात स्वीकार की। गांधी ने यह बात स्वीकार की कि अब मैं समझता हूं, क्योंकि आजादी मिलते ही जो हिंसा का दौर छूटा पूरे मुल्क में, उससे सब बात पता चल गयी कि यह मुल्क कितना अहिंसक है। गांधी ने भी यह बात स्वीकार की कि मैं समझता हूं कि हिन्दुस्तान ने कमजोरी की वजह से अहिंसा की बातें मान ली थी। हिन्दुस्तान अहिंसक नहीं है।

कौन सी अहिंसात्मक क्रान्ति हो गयी ! वह जो क्रान्ति गांधी के साथ चली भी, वह क्रान्ति भी बहुत अद्भुत थी। वह क्रान्ति, वह विरोध, वह बगावत अंग्रेजों के तो खिलाफ थी, लेकिन हिन्दुस्तान की सामाजिक व्यवस्था के खिलाफ नहीं थी। जबतक अंग्रेजों की खिलाफत चली, तब तक तो ठीक था। अब आगे नहीं बढ़ना है इसलिए।

हिन्दुस्तान से अंग्रेजी हुकूमत गयी, हिदुस्तान आजाद नहीं हुआ।

हिन्दुस्तान से अंग्रेजी हुकूमत गयी और हिन्दुस्तानी पूंजीपति के हाथ

में हुकूमत आ गयी। हिन्दुस्तान की गुलामी जारी है। अंग्रेज पूंजीपति की जगह हिन्दुस्तानी पूंजीपति आ गया, लेकिन हिन्दुस्तान की गुलामी में कोई फर्क नहीं पड़ा है। और इसीलिए हिन्दुस्तान का पूंजीपति गांधी के आसपास चक्कर लगाता था, क्योंकि गांधी से उनको आशा थी कि इस आदमी के कारण तो जनता हिंसा नहीं कर सकेगी, क्योंकि हिंसा की अगर क्रान्ति होती तो हिदुस्तान का पूंजीपति भी उस क्रान्ति में बह जाता, यह निश्चित था।

गांधी के कारण हिंसात्मक क्रान्ति नहीं हो सकेगी, पूंजीवादी सुरक्षित है।

और गांधी की समझौतावादी प्रवृत्ति के कारण ही अंग्रेज पूंजीपति से सत्ता हमारे हाथ में आ जायेगी, यह भी हिन्दुस्तान की पूंजीवादी व्यवस्था को पता था। इसलिए जैसे ही हिन्दुस्तान की आजादी मिल गयी, हिन्दुस्तान के पूंजीपतियों और हिदुस्तान के नेताओं ने गांधी को एक तरफ फेंक दिया। काम खत्म हो गया, वह चली हुई कारतूस सिद्ध हो गये। काम पूरा हो गया था। जो काम होना था, हो चुका था। अब गांधी खतरनाक थे, अब गांधी की कोई जरूरत न थी। इसलिए गांधी ने मरने के कुछ दिन पहले कहा कि मैं एक खोटा सिक्का हो गया हूं। अब मेरी कोई पूछ नहीं है, अब मुझे कोई नहीं पूछता है। लेकिन फिर भी वह यह नहीं समझ पाये कि अब उन्हें कोई क्यों नहीं पूछता है ? इसलिए नहीं पूछता है, कि जो उन्हें पूछ रहे थे लोग, उनका काम पूरा हो गया है। अंग्रेज के हाथ से सत्ता हिन्दुस्तान के पूंजीपति के हाथ में आ गयी है। गांधी का काम पूरा हो गया है, अब गांधी की कोई भी जरूरत नहीं है। और गांधी का मौजूद रहना खतरनाक सिद्ध हो सकता है।

यह जो क्रान्ति हुई, यह क्रान्ति नहीं थी। यह केवल सत्ता का एक पूंजीपति वर्ग से दूसरे पूंजीपति वर्ग के हाथ में हस्तांतरण था। यह ट्रांसफर था, यह कोई क्रान्ति नहीं थी। समाज की जिंदगी वैसी की वैसी है, बल्कि बदतर हो गयी है। **बीस सालों में आजादी के बाद हिन्दुस्तान का चित्त, हिन्दुस्तान की चेतना और आत्मा पतित हुई है, विकसित नहीं हुई है।** असल में अपना पूंजीपति और भी खतरनाक सिद्ध हुआ है।

गांधी की हत्या क्यों हुई ?

और मैं आपको कहता हूं, अंग्रेज पूंजीपति तो गांधी के प्रति सदय रहा, भारत के पूंजीपति गांधी के प्रति सदय भी नहीं रह सकता था । और गांधी की हत्या इसका सबूत है । अंग्रेज हुकूमत के बीच गांधी जिन्दा रह सके । अंग्रेज ने गांधी की हत्या नहीं की । मुसलमान ने गांधी को गोली नहीं मारी । एक हिन्दू ने और हिन्दुस्तान के आजाद होने के बाद गोली मारी, यह आकस्मिक नहीं है, एक्सीडेंटल नहीं है । यह बताता है कि हमारा पूंजीपति, हमारे देश का सत्ताधिकारी पश्चिम के सत्ताधिकारियों से भी खतरनाक सिद्ध हो सकता है । हम ज्यादा खतरनाक सिद्ध हो सकते हैं । वह जो काला पूंजीपति है, वह गोरे पूंजीपति से ज्यादा खतरनाक सिद्ध हो रहा है ।

गांधी के एक भक्त हैं । जब हिन्दुस्तान आजाद हुआ, तब उन सज्जन के पास केवल तीस करोड़ की पूंजी थी, आज उनके पास तीन सौ तीस करोड़ की पूंजी है । बीस वर्ष में तीन सौ करोड़ के करीब की पूंजी का इकट्ठा हो जाना मिरेकल है, चमत्कार है । लेकिन मानना चाहिए कि सत्संग का फायदा होता है । ग्रन्थों में लिखा है, सत्संग से बहुत फायदा होता है । उनको भी गांधी के सत्संग से फायदा हुआ है ।

नहीं, गांधी कोई क्रान्तिकारी विचारद्रष्टा नहीं हैं; **गांधी एक सुधारवादी, समझौतावादी चिन्तक हैं ।**

और उन्होंने जो समाज की रूपरेखा दी है, वह कोई क्रान्ति की रूपरेखा नहीं है । और इसलिए मैं गांधी के अवैज्ञानिक चिन्तन का, उनकी क्रान्तिविरोधी दृष्टि का, उनके प्रतिगामी और पीछे लौट चलने वाली प्रतिक्रियावादी मनोवृत्ति का स्पष्ट रूप से विरोध करता हूं ।

लेकिन यह गांधी का विरोध नहीं है । **गांधी के व्यक्तित्व के प्रति मुझे समादर है, लेकिन गांधी के विचार अगर गलत हैं तो चाहे कोई भी परिणाम हो, मैं उन विचारों को गलत कहना चाहता हूं ।** और मैं इतनी आशा करता हूं मुल्क की नयी पीढ़ियों से, मुल्क के विचारशील लोगों से कि वे, सिर्फ मुझे गालियां कोई अगर दे तो इससे मेरी बात को गलत नहीं समझ लेंगे । बल्कि मुझे दी गयी गालियां यह बताती हैं कि मैंने

जो भी कहा है, उसका एक भी उत्तर नहीं दिया जा रहा है, सिर्फ मुझे गालियां दी जा रही हैं । और गालियां कमजोर देते हैं । जो मैं कह रहा हूं, उसका उत्तर दिया जाना चाहिए । मैं उत्तर के लिए तैयार हूं ।

और मेरा दावा नहीं है कि जो मैं कहता हूं, सही है, क्योंकि मैं तो विचार और तर्क में विश्वास करता हूं । मैं दावा नहीं करता कि मेरी अन्तर्वाणी जो कहती है, वही होना ही चाहिए । वह गलत हो सकता है, लेकिन मेरी बातों का उत्तर चाहिए । मुझे गालियां देने से कुछ परिणाम नहीं निकल सकता, और गालियां देकर जनता को बहुत दिन तक गुमराह भी नहीं रखा जा सकता । जनता से मुझे आशा है और इस बात की आशा नयी पीढ़ियों से और भी ज्यादा है **कि भविष्य, अब सोचने वाला भविष्य होगा भारत का** । बहुत दिन हम बिना सोचे जी लिये अन्धेरे में । क्या कभी भगवान वह मौका नहीं देगा कि यह देश भी विचार करे, यह देश भी जागे और सोचे ?

उसी विचार की दिशा में मैं प्रश्न कर रहा हूं । एक अकेले आदमी की आवाज कितनी हो सकती है, जिसके पास न कोई संगठन है, न कोई संस्था है, न कोई साथी है, न कोई संपत्ति है ? एक अकेले आदमी की आवाज कितनी हो सकती है ? लेकिन मैं इस आशा में आवाज दिये ही चला जाऊंगा, जब तक कि वह मेरी आवाज बिल्कुल बन्द ही न कर दें । मुझे यह खयाल है कि कुछ लोग यह आवाज सुन लेंगे । और अगर आवाज में कोई सत्य होगा तो यह आवाज रुकवायी नहीं जा सकती, यह गांव-गांव, कोने-कोने, एक-एक आदमी तक जरूर पहुंच जायेगी । अगर परमात्मा की यह मर्जी होगी कि भारत सत्य के प्रकाश में जागे तो यह होकर रहेगा । इसे कोई भी रोक नहीं सकता है ।

और बहुत सी बातें रह गयीं, वह कल सुबह मैं बात करूंगा । मेरी बातों को इतने प्रेम और शान्ति से सुना, उससे अनुगृहीत हूं । और अन्त में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें ।

■■

मेरी दृष्टि में रचनात्मक क्या है ?

मेरे प्रिय आत्मन,

बहुत से प्रश्न पूछे गये हैं। एक मित्र ने पूछा है कि क्या मैं बोलता ही रहूंगा, कोई सेवा कार्य नहीं करूंगा, कोई रचनात्मक काम नहीं करूंगा ? क्या मेरी दृष्टि में सिर्फ बोलते ही जाना पर्याप्त है ?

इस बात को थोड़ा समझ लेना उपयोगी है। पहली बात तो यह कि जो लोग सेवा को सचेत रूप से करते हैं, कांशसली करते हैं, उनलोगों को मैं समाज के लिए अहितकर और खतरनाक मानता हूं। सेवा जीवन का सहज अंग हो छाया की तरह, वह हमारे प्रेम से सहज निकलती हो, तब तो ठीक; अन्यथा समाज-सेवक जितना समाज का अहित और नुकसान करते हैं, उतना कोई भी नहीं करता है।

समाज-सेवा भी अहंकारियों के लिए एक व्यवसाय है। दिखायी ऐसा पड़ता है कि समाज-सेवक तो विनम्र है, सबकी सेवा करता है; लेकिन सेवक के अहंकार को देखेंगे तो पता चलेगा कि सेवक भी सेवा करके मालिक बनने की पूरी चेष्टा में संलग्न होता है।

विचार मूलभूत है

मेरी दृष्टि में जीवन में शान्ति हो और अन्तस्तल पर प्रेम का उद्घाटन हो तो आदमी जो भी करता है, वह सेवा है। और रास्ते पर बुहारी लगाना ही रचनात्मक नहीं है; **आपकी खोपड़ी में बुहारी लगाना ज्यादा रचनात्मक है**। मैं सिर्फ बोल नहीं रहा हूं। **विचार से बड़ी और कोई रचना जगत् में नहीं है। विचार से महीन, विचार से ज्यादा अद्भुत, विचार से ज्यादा शक्तिशाली कोई क्रांति नहीं है**। क्योंकि मूलतः विचार के बीज ही हृदय में जाकर अन्ततः जीवन को, समाज को, रूपान्तरित करते हैं। लेकिन अगर गांधीजी और विनोबाजी के कारण एक ऐसी बात फैल गयी है कि कोई सड़क पर बुहारी लगाये या कोई जाकर किसी बीमार आदमी का हाथ-पैर धो दे, या कोढ़ी का पैर दबा दे तो वह विचार देने से भी बड़ी सेवा कर रहा है, यह तो बात निहायत नासमझी से भरी हुई है।

इस जगत में जो कुछ भी फलित हुआ है, इस जगत में जो भी श्रेष्ठ है, इस जगत में जो भी सुंदर है, मनुष्य के जीवन ने जो भी ऊंचाइयां छुई हैं, वे ऊंचाइयां अन्ततः विचार की ऊंचाइयां हैं। और ये जो सेवा में रत लोग हैं. वे भी सेवा के किसी विचार-बीज के कारण अनुप्राणित हैं। मुझे यह समझ में नहीं पड़ता, मैं इसे नितान्त मूढ़ता की बात समझूंगा कि वे बैठकर किसी गांव की बुहारी लगायें और कहीं जाकर किसी झोपड़े की सेवा करें। जो मैं कर सकता हूं, उसके मुकाबले वह करना देश के लिए नुकसान पहुंचाना होगा।

मेरी दृष्टि में तो भारत के विचार की शक्ति खो गयी है; भारत के पास विचार की ऊर्जा नष्ट हो गयी है। भारत ने हजारों साल से सोचना बन्द कर दिया है। भारत सोचता ही नहीं है। यह इतना बड़ा पत्थर भारत के प्राणों पर है कि अगर कुछ हजार लोग अपने सारे जीवन को लगाकर इस पत्थर को हटा दें तो भारत का जितना हित हो सकता है, उतना इन तथाकथित रचनात्मक कहे जानेवाले कामों से नही हो सकता। और जो लोग इन रचनात्मक कामों के लिए अतिशय बात करते हुए प्रतीत होते हैं, उनको भी समझ लेना जरूरी है।

सुधारवाद से सावधान !

समाज को बदले बिना सारे रचनात्मक काम पुराने समाज को बचाने वाले, टिकाने वाले सिद्ध होते हैं। समाज की जीवन-व्यवस्था में आमूल रूपान्तरण न हो तो समाज में चलने वाली सेवा, समाज में चलने वाला रचनात्मक आंदोलन पुराने समाज के मकान में ही प्लस्तर बदलने, रंग-

रोगन करने, खिड़की-दरवाजों को पोतने वाला सिद्ध होता है। नहीं, आज समाज को रचनात्मक काम की नहीं, विध्वंसात्मक काम की जरूरत है। आज समाज को कंस्ट्रक्शन की नहीं, एक बहुत बड़े डिस्ट्रक्शन की जरूरत है। आज समाज के पास इतना कचरा, इतना कूड़ा है हजारों साल का कि इसमें आग लगा देने की जरूरत है। इस वक्त हिम्मत करके जो लोग विध्वंस करने को राजी हैं, वे ही लोग एकमात्र रचनात्मक काम कर रहे हैं। यह समाज जाये, यह सड़ा गला समाज नष्ट हो, इसके लिए सब कुछ किया जाना आज जरूरी है।

मुझे दिखायी पड़ता है कि ये जो रचनात्मक काम करने वाली बातें हैं, ये पुराने दकियानूस समाज को किसी तरह बचाये रखने की चेष्टाओं से ज्यादा नहीं हैं। सब सुधारवाद अन्ततः सड़ गये, जाते हुए, विदा होते हुए समाज को बचाने की अंतिम चेष्टा का फल होता है। और जो लोग सेवा के लिए उत्सुक होते हैं, जैसा कि विनोबा कहते हैं कि सेवा धर्म है, वे गलत कहते हैं, यह बात निहायत गलत है।

धर्म सेवा हो सकता है, लेकिन सेवा कभी भी धर्म नहीं हो सकती। इस फर्क को समझ लेना जरूरी है। सेवा करने से कोई धार्मिक नहीं हो सकता है। हां, धार्मिक व्यक्ति सेवा करता है। असल में तो यह है कि धार्मिक व्यक्ति जो भी करता है, वह सेवा है। धर्म से तो सेवा पैदा होती है, लेकिन सेवा से कोई धर्म पैदा नहीं होता। और हम देख रहे हैं कि दुनिया में दो-तीन हजार वर्षों से जिन लोगों ने भी सेवा को धर्म करने की बात बतायी हैं, उन्होंने धर्म को भी नष्ट किया है और सेवा को भी विकृत किया है।

पादरी और सेवक बच्चे

मैंने एक छोटी सी घटना सुनी है। मैंने सुना है, एक चर्च में मुहल्ले-पड़ोस के बच्चे रविवार की सुबह इकठ्ठे होते थे। चर्च के पादरी ने उन बच्चों को कहा कि एक सेवा का कार्य जरूर रोज करना चाहिए, क्योंकि यही परमात्मा की सच्ची प्रार्थना है। उन बच्चों ने पूछा, कैसा सेवा का कार्य? उस पादरी ने कहा कि जैसे कोई नदी में डूबता हो तो उसको

बचाना चाहिए; कोई बीमार हो तो उसके लिए दवा ला देनी चाहिए; कोई बूढ़ा आदमी रास्ता पार न कर पाता हो तो उसको सहारा देकर रास्ता पार करवा देना चाहिए। और अगले रविवार को जब तुम आओ, तब एक सेवा का कार्य जरूर करके आना। मैं पूछूंगा।

अगले रविवार को बच्चे इकट्ठे हुए। उस चर्च के पादरी ने पूछा कि तुममें से किसी ने सेवा का कार्य किया? उन्तीस बच्चों में से तीन बच्चों ने हाथ उठाये कि हमने सेवा का कार्य किया है। उस पादरी ने कहा, 'बहुत अच्छा! कम से कम तीन ने किया है, यह भी अच्छा है। सेवा ही प्रार्थना है। सेवा ही परमात्मा तक पहुंचने का मार्ग है। जो सेवा करेंगे, वे ही असली धन को, आत्मिक धन को उपलब्ध होते हैं। तुमने, बेटे, कौन सी सेवा की?'

पहले लड़के ने खड़े होकर कहा कि मैंने एक बूढ़ी औरत को रास्ता पार करवाया है। पादरी ने कहा, बहुत अच्छा किया। बूढ़े आदमियों को रास्ता पार करवाना चाहिए। दूसरे से पूछा कि बेटे, तुमने क्या किया? उसने कहा, मैंने भी एक बूढ़ी औरत को रास्ता पार करवाया। वह पादरी थोड़ा हैरान हुआ। उसने कहा, दोनों को बूढ़ी औरतें रास्ते पर मिल गयीं? लेकिन कोई आश्चर्य नहीं, बहुत बूढ़ियां हैं, मिल सकती हैं। तीसरे से पूछा, बेटे, तुमने क्या किया? उसने कहा, मैंने भी एक बूढ़ी औरत से रास्ता पार करवाया। उसने कहा, बड़ी हैरानी की बात है, तुमको तीन बूढ़ियाँ मिल गयीं? उन तीनों ने कहा, तीन नहीं, बूढ़ी एक ही थी। हम तीनों ने उसी को पार करवाया। और पादरी ने पूछा, क्या बूढ़ी इतनी बूढ़ी थी कि तीन आदमियों की जरूरत पड़ी उन्हें पार करवाने के लिए?

उन तीनों ने कहा, वह पार नहीं होना चाहती थी, जबरदस्ती पार करवाया है। वह तो भागती थी इस तरफ कि हमें वहां जाना नहीं है। लेकिन आपने कहा था कि बिना सेवा किये परमात्मा नहीं मिल सकता तो हमने उसे जबरदस्ती पार करवा दिया। वह बहुत चिल्लाती थी कि मुझे उस तरफ नहीं जाना है।

यह जो सेवा को पकड़े हुए प्रोफेशनल सेवक हैं, यह जो धन्धा बनाये

हुए हैं सेवा का, इनको तो बूढ़ियों को रास्ता पार करवाना है, इनको तो कुछ भी करवाना है, डूबते को बचाना है। यहां तक भी, अगर डूबते न मिलें तो किसी को डुबाकर भी बचाने का इन्जाम किया जा सकता है। नहीं, ऐसी सेवा वगैरह के समर्थन में मेरे मन में कोई बात नहीं है। इन तथाकथित सेवकों को मैं मिस्चीफ मांगर्स कहता हूं, ये समाज में सबसे ज्यादा मिस्चीवियस एलीमेंट हैं, ये समाज में सबसे ज्यादा उपद्रवकारी तत्व हैं। इनको सेवा करनी है। इनको सेवा करनी ही है, चाहे कुछ भी हो जाए।

सेवा धर्म नहीं, धर्म सेवा है

इस तरह की सेवा से हित नहीं हुआ है। मैं नहीं कहता हूं कि सेवा धर्म है। मैं जरूर कहता हूं कि धर्म सेवा है। अगर कोई व्यक्ति धर्म को उपलब्ध हो तो उसके जीवन में जो भी है, वह सब सेवा बन जाता है। लेकिन तब वह कांशस नहीं होता; तब वह सुबह से निकलता नहीं है कि किसकी सेवा करें। तब वह जीवन में जीता है और उसके जीने से सेवा निकलती है। जितना भी उसका जीना है, उसकी चर्या है, उसको श्वांस भी लेनी है, वह सब अनजाने ही, बिना पता चले, सेवा बन जाती है। जहां हृदय में प्रेम है, वहां व्यक्ति में सेवा है। फिर वह चिन्ता नहीं लेता कि सेवा दिखायी पड़े, अखबारों में उसकी खबर छपे, फोटो निकाला जाए, फोटोग्राफर तैयार रहे, जब सेवक सेवा करता हो।

क्योंकि आजकल कोई सेवक बिना फोटोग्राफर के सेवा नहीं करता है, यह आपको मालूम है। फोटोग्राफर को पहले खबर कर आता है कि आज हम सेवा करने जा रहे हैं। फिर इसी तरह के धोखेबाज सेवकों की जमात हमेशा बन जाती है। हम तो देख रहे हैं, हिन्दुस्तान में यह हो गया है। जिनको हम 1947 के पहले सेवक की तरह जानते थे, 1947 के बाद एक आधी रात के परिवर्तन में, 15 अगस्त के बाद वे सब एकदम मालिक हो गये। और तब उसका असली रूप हमें दिखायी पड़ा कि ये जो सेवक मालूम पड़ते थे, सुबह बैठ कर चर्खा चलाते थे, हरिजन कालोनी की सफाई करते थे, ये आदमी बिलकुल दूसरे सिद्ध

हुए। जब इनके हाथ में ताकत आयी, तब ये बिल्कुल और हो गये। इनको पहचानना मुश्किल हो गया कि वे वही लोग हैं! यह कैसा चमत्कार हो गया! यह पन्द्रह अगस्त की रात बड़ी मेरेकिलस, बड़ी चमत्कारी मालूम पड़ती है। और अंग्रेज बड़े जादूगर थे, मालूम होता है। जरा सी तरकीब और हिन्दुस्तान के सारे सेवक क्या से क्या हो गये!

नहीं, यह आकस्मिक नहीं है। लेकिन न गांधी जी इस बात को पहचान पाये और न भारत अभी इस बात को पहचान पाया है कि सेवा करना भी प्रेस्टीज, इज्जत पाने की तरकीब है। और अगर दूसरी तरकीब मिल जाए पाने की तो सेवक फौरन सेवा छोड़कर मंच पर आसीन हो जायेगा, कुर्सियों पर बैठ जायेगा।

वह सेवा भी अहंकार की तृप्ति का मार्ग है। इसलिए दो सेवकों को अगर आप कह दो कि फलां सेवक आपसे बड़ा सेवक है तो उसे दुख हो जाता है कि यह कैसे हो सकता है कि मुझसे बड़ा कोई सेवक हो। सेवक भी मानता है कि मुझसे बड़ा कोई भी नहीं है। यह सब अहंकार की चेष्टा है। अहंकार से जो सेवा पैदा होती है, वह सेवा सिर्फ बहाना है। अन्ततः भीतर गहरे में यशाकांक्षा, पद-प्रतिष्ठा अस्मिता और अहंकार की ही यात्रा करती है।

नहीं, ऐसी किसी सेवा के मैं पक्ष में नहीं हूं।

मैं जरूर उस सेवा के पक्ष में हूं **जो व्यक्ति के आत्मिक रूपांतरण से उपलब्ध होती है, जो सहज हो जाती है**। उसे पता भी नहीं चलता। उसे पता भी नहीं चलता कि वह सेवा कर रहा है। अगर आप उससे कहने जायें कि आप सेवा कर रहे हैं तो वह हैरान होगा। वह कहेगा, कैसी सेवा? मैंने तो कुछ भी नहीं किया। मैं जो कर सकता था, वह हुआ है।

छोटा भाई है, बोझ नहीं

मैंने सुना, एक संन्यासी भारत आया। वह अफ्रीका में था। वह हिमालय की यात्रा, बद्री-केदार की यात्रा को गया। जब वह पहाड़ चढ़ रहा था, तेज धूप थी, आकाश से आग बरस रही थी। पहाड़ की चढ़ाई

थी, वह हांफ रहा था, पसीना बह रहा था। तभी उसे एक पहाड़ी लड़की भी दिखायी पड़ी जो पहाड़ चढ़ रही है। उस लड़की की उम्र ज्यादा नहीं है, तेरह-चौदह साल की होगी। बहुत नाजुक है, उसके चेहरे पर आग झलक रही है, पसीना बह रहा है। वह थक गयी है, वह हांफ गयी है। और कन्धे पर अपने भाई को बिठाये हुए है। वह भी तगड़ा है, छोटा है लेकिन मजबूत है, वजनी है। संन्यासी उसके पास पहुंचा तो सिर्फ दयावश उसने कहा कि बेटी, बहुत बोझ लग रहा होगा तुझे ? उस लड़की ने बहुत चौंककर संन्यासी को देखा और कहा, स्वामी जी, बोझ आप लिये हुए हैं; **यह तो मेरा छोटा भाई है।** बोझ आप लिये हुए हैं। संन्यासी अपना बिस्तर वगैरह बांधे हुए है। लड़की ने कहा, यह मेरा छोटा भाई है, बोझ नहीं है।

उस संन्यासी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि मेरी जिन्दगी में मुझे इतना अमृत वचन पहले कभी सुनने को नहीं मिला था। बहुत शास्त्र मैंने पढ़े थे, लेकिन यह अद्भुत सत्य पहली दफे मुझे पता चला, उस पहाड़ी लड़की ने कहा, यह भाई है मेरा छोटा, यह बोझ नहीं है!

छोटा भाई बोझ नहीं होता। एक कन्धे पर छोटे भाई को ले जाना सेवा भी नहीं हो सकता है। यह तो प्रेम का कृत्य है। इसमें कहीं कोई सेवा नहीं है। इस छोटी लड़की को पता भी नहीं है कि वह सेवा कर रही है। **जिस दिन सेवा इतनी अनकांसेस, इतनी सहज, बिना जाने, बिना पता चले जब सेवा होती है तो वैसी सेवा धर्म है।**

लेकिन वैसी सेवा तभी होती है जब कि भीतर धर्म का उदय हो। **भीतर धर्म का जागरण हो तो जीवन सेवा बन जाता है।**

लेकिन इधर उलटा चल रहा है। इधर समझाया जा रहा है कि तुम बाहर जीवन सेवा का बना लो तो भीतर धर्म का जन्म हो जायेगा। यह सरासर व्यर्थ और गलत बात है। ऐसा कभी नहीं हो सकता। आप लाख सेवा करो, मन धार्मिक नहीं हो जायेगा।

जीवन में जो क्रान्तियां हैं, वे बाहर से भीतर की तरफ नहीं होती हैं। जीवन की सारी क्रान्तियां भीतर से बाहर की तरफ होती हैं। अगर हम यहां एक दिया जलाएं इस भवन में तो अन्धेरा बाहर निकल जायेगा, यह सच है। लेकिन अगर कोई यह कहे कि तुम अन्धेरा बाहर निकाल दो तो दिया जल जायेगा तो वह बिल्कुल ही फिजूल बातें कह रहा है। आप अन्धेरे को बाहर नहीं निकाल सकते हैं, और अन्धेरे को आप कितना ही बाहर निकालने की कोशिश करें, अन्धेरा बाहर नहीं निकलेगा। और निकल भी जाए तो भी दिया नहीं जल जायेगा। दिया जल जाए तो अन्धेरा बाहर निकल जाता है। लेकिन अन्धेरा बाहर निकालने से कोई दिया नहीं जलता है।

भीतर प्रकाश जले धर्म का तो उसकी किरणें जीवन को, आचरण को सेवा बना देती हैं। लेकिन इस भूल में आप मत रहना कि हम जीवन को सेवा बना लेंगे और भीतर की आत्मा रूपान्तरित हो जायेगी। लेकिन यह बहुत बुनियादी भूल है। और यह बुनियादी भूल इस देश के चरित्र को हजारों साल से विकृत कर रही है। इसको थोड़ा समझ लेना और भी उपयोगी होगा, क्योंकि इस सम्बन्ध में दो प्रश्न और हैं। वे भी इस सन्दर्भ में समझ में आ सकेंगे।

आचरण नहीं, अंतस मुख्य है

महावीर को हमने देखा; महावीर का आचरण हमें दिखायी पड़ा। आत्मा तो किसी की दिखायी नहीं पड़ती, आचरण ही दिखायी पड़ता है। आचरण बाहर होता है, आत्मा तो भीतर होती है। सिर्फ व्यक्ति को दिखायी पड़ती है, बाहर से दूसरे को नहीं दिखायी पड़ सकती। मैं भीतर क्या हूं, वह तो नहीं दिखायी पड़ सकता। मेरे बाहर मैं क्या करता हूं, वही दिखायी पड़ सकता है। लेकिन जो भी मैं करता हूं, वह मेरे होने से आता है। मेरे करने से मेरा होना नहीं निर्मित होता, मेरे होने से, मेरी बीइंग से मेरी डूइंग निकलती है। मैं जो हूं, वह मेरे करने में आता है। लेकिन मेरे करने से मेरी बीइंग, मेरी आत्मा निर्मित नहीं होती।

महावीर को हमने देखा उदाहरण के लिए; उनकी जिन्दगी में दिखायी पड़ी अहिंसा। वे पांव भी फूंक-फूंक कर रखते हैं कि कोई कीड़ी न दब जाए। वे पलक भी खयाल से झपते हैं कि कोई कीटाणु न मर जाए। वे रात करवट भी नहीं बदलते सोने में कि कहीं करवट बदलने में कोई

कीड़ा-मकोड़ा आ गया हो और दब न जाए । वे अन्धेरे में चलते नहीं, कि कहीं किसी के जीवन को चोट न पहुंच जाए । उनके जीवन में हमें दिखी अहिंसा कि वह फूंक-फूंक कर जी रहे हैं । हमको आचरण दिखायी पड़ गया, महावीर की आत्मा तो दिखायी न पड़ी । आपने महावीर को देखा कि यह आदमी फूंक-फूंक कर चलता है, पानी छान कर पीता है, रात करवट नहीं बदलता । आपने तय किया कि हम भी अहिंसक होंगे, रात करवट नहीं बदलेंगे, पांव फूंक-फूंक कर रखेंगे, पानी छान कर पियेंगे ।

आप पिएं पानी छानकर जिन्दगी भर, सारे समुद्र छान डालें और आप पांव फूंक-फूंक कर रखें, और चाहें तो पांव रखें ही मत और करवट मत बदलें, चाहें तो करवट लें ही मत, लेटें ही मत; लेकिन महावीर की आत्मा पैदा नहीं हो जायेगी । लेकिन हजारों संन्यासी महावीर के पीछे इसी नासमझी को दोहराये चले जाते हैं । महावीर के पांव फूंक-फूंक कर रखने के कारण आत्मा का जन्म नहीं हो गया है । आचरण से आत्मा निर्मित नहीं होती, **आत्मा से आचरण प्रवाहित होता है ।**

महावीर ने भीतर आत्मा को जाना है, इसलिए यह आचरण पैदा हुआ है । और हम ? हम आचरण करेंगे और आत्मा को जानना चाहेंगे जो कि उलटा हो गया । उलटा नहीं हो सकता है । तो हजारों साल से महावीर के पीछे अहिंसक खड़े हो रहे हैं, लेकिन महावीर की सुगन्ध किसी को भी उपलब्ध नहीं हुई । ठीक महावीर जैसे नंगे खड़े हो जाते हैं; नंगे खड़े होने से कोई महावीर नहीं बन जायेगा । लेकिन वे महावीर जैसे बाल-वाल घोंटाकर खड़े हो जाते हैं; महावीर जैसे चलते हैं, महावीर जैसे बैठे हैं । यह सब एक्टिंग हैं, अभिनय है । इससे कोई महावीर पैदा नहीं हो सकता । यह आचरण का आरोपण है । इसको थोपते चले जाओ, इससे कुछ भी नहीं होगा । महावीर की ऊर्जा इससे पैदा नहीं होगी । ऐसे हजारों संन्यासी हैं महावीर के, लेकिन कहां महावीर की सुगन्ध, कहां वह जीवन, कहां वह ज्योति, कहां वह संगीत ? कुछ भी कोई खबर नहीं देता है । नहीं मिल सकती है ।

ठीक ऐसा सारे तत्वों के सम्बन्ध में होता है । हम देखते हैं आचरण,

और वैसा आचरण करने लगते हैं । गांधी चर्खा चलाते हैं । नकल-चोर पीछे बैठकर चर्खा चलाने लगेंगे और सोचेंगे कि बन गये गांधी ! इतना सस्ता और आसान नुस्खा होता तो दुनिया में सब कुछ अभी तक ठीक हो गया होता । हां, यह आदमी धोखे में पड़ गया है । यह आदमी बिल्कुल धोखे में पड़ गया है । यह बिल्कुल खड़ा हो जायेगा । अभी विनोबा के पास जाएं तो दो-चार उनकी शकल के आदमी मिल जाते हैं । ठीक वैसी ही दाढ़ी-वाढ़ी बनाये, कपड़ा-वपड़ा लपेट कर वैसे ही खड़े हो गये हैं । इन नासमझों के कारण जिन्दगी को फायदा नहीं होता है, नुकसान होता है ।

नहीं, बाहर की नकल से कभी भी कोई भीतर का असल पैदा नहीं होता है । भीतर का असल कैसे पैदा होता है, वह सवाल है । आचरण से नहीं, भीतर का असली तत्व पैदा होता है समाधि से, ज्ञान से । कल रात मैं आपसे बात करूंगा कि वह ध्यान कैसे पैदा हो सकता है । अभी इतना ही कहना चाहता हूं कि सेवा नहीं है महत्वपूर्ण, **महत्वपूर्ण है वह हृदय कि जहां से सेवा प्रवाहित होती है ।** और अगर वह हृदय न हो तो आप सेवा कर सकते हैं; लेकिन आपकी सेवा हितकर नहीं होगी, अमंगल सिद्ध होगी, अहितकर सिद्ध होगी । और दुनिया में जितने सेवक कम हों इस तरह के, उतनी दुनिया शान्ति से जी सकती है । वे दुनिया को शान्ति से नहीं जीने देते । उन्हें सेवा करनी है ।

मैं कोई सेवक नहीं हूं । और मुझे किसी की कोई सेवा नहीं करनी है, अपनी ही कर लूं तो पर्याप्त है । लेकिन अगर आप अपनी ही सेवा कर रहे हैं तो आपकी जिन्दगी में वह सुगन्ध पैदा होगी, जिससे बहुतों की सेवा हो जायेगी । लेकिन उसका कभी आपको पता भी नहीं चलेगा ।

तो सेचत रूप से सेवा करने वालों के पक्ष मे मैं नहीं हूं ।

और आप पूछते हैं कि रचनात्मक कार्य क्या करूंगा ?

रचनात्मक क्या है ?

किस बात को रचनात्मक कार्य कहते हैं आप ? किस बात को रचनात्मक कार्य कहते हैं ? जो गोरख-धन्धा रचनात्मक कार्यों के नाम

से चलता है, उसे रचनात्मक कार्य कहते हैं ? यह रचनात्मक कार्य है ?

रचनात्मक कार्य है मनुष्य की चेतना को ध्यान में रखना और वह यह कि मनुष्य की चेतना का आविर्भाव कैसे हो, मनुष्य कैसे स्वतंत्र हो, मनुष्य की सोयी हुई आत्मा कैसे जागे, मनुष्य के भीतर जो छिपा हुआ है, वह कैसे प्रगट हो। इसके अतिरिक्त कोई रचनात्मक कार्य नहीं है। **और वह प्रगट हो जाए तो हजार–हजार रचनात्मक कार्य जागी हुई चतना के आसपास संगठित होने शुरू होते हैं, प्रगट होने शुरू होते हैं।**

लेकिन हमारी पकड़ में क्षुद्र चीजें एकदम आती हैं। हम इतने मैटीरियलिस्ट हैं, हम इतने पदार्थवादी हैं कि हमको यही समझ में आता है। हमको समझ में नहीं आयेगा कि श्री अरविंद भी कोई सेवा कर रहे हैं शांति के लिए बैठकर। हम कहेंगे, क्या सेवा कर रहा है यह आदमी ? यह आदमी सेवा नहीं कर रहा है, बैठा है पांड़ीचेरी के भवन में बन्द होकर, यह क्या सेवा कर रहा है ? सेवा विनोबा जी कर रहे हैं जो कि पैदल चल रहे हैं, गांव-गांव घूम रहे हैं। यह आदमी क्या सेवा कर रहा है, श्री अरविंद ? यह अन्धेरी कोठरी में बैठ कर क्या कर सकता है?

लेकिन आपको पता नहीं है कि अरविंद जितनी सेवा कर रहा है उतना आपके सेवको में से कोई भी सेवा नहीं कर रहा है। लेकिन वह जरा फिर खोज की बात है कि अरविंद क्या कर रहा है वहां बैठकर ?

क्या आपको पता है कि विचार की क्रांति क्या है ? क्या आपको पता है कि विचार की तरंगें सारे जगत को आंदोलित और प्रभावित करती हैं ? क्या आपको पता है कि मैं अपने मौन में बैठकर भी आपके प्राणों को प्रवाहित कर सकता हूं ?

विचार-सम्प्रेषण और रूसी प्रयोग

अभी रूस में एक वैज्ञानिक प्रयोग हुआ। क्योंकि अरविंद की बात को बताना मुश्किल होगा, लेकिन रूस के वैज्ञानिक प्रयोग को समझना आसान हो जायेगा। फयादेव नाम के एक वैज्ञानिक ने एक बहुत अद्‌भुत प्रयोग किया है। और रूस में हुआ है, इसलिए और भी महत्वपूर्ण है; क्योंकि रूस तो इस तरह की बातों को मानने को एकदम राजी

नहीं होता। फयादेव ने यह प्रयोग किया कि दूर, कितनी ही दूर व्यक्ति हों, विचार की तीव्र तरंगों से उन व्यक्तियों को प्रवाहित किया जा सकता है। प्रभावित किया जा सकता है।

मास्को में बैठकर तिफलिस में, एक हजार मील दूर प्रयोग चलता है। मास्को में फयादेव बैठा हुआ है अपनी प्रयोगशाला में और तिफलिस में विचार की तरंगें भेजता है। सिर्फ विचार से तिफसिल के बगीचे में एक १० नम्बर की सीट पर प्रयोग चलता है। आसपास लोग छिपे बैठे हैं देखने को कि क्या परिणाम होता है। एक अजनबी आदमी आकर दस नम्बर की सीट पर बैठा है। फोन से खबर की गयी फयादेव को कि दस नम्बर की सीट पर एक आदमी बैठा है; तुम वहां से विचार के द्वारा इसे सो जाने की सलाह दो। फयादेव ने एक हजार मील दूर आंख बन्द करके उस दस नम्बर की सीट पर बैठे आदमी को आंतरिक सुझाव दिया कि तू सो जा ! तीन मिनट के भीतर वह आदमी सो गया।

लेकिन यह भी डर है कि वह संयोग की बात हो कि वह थका–मांदा यात्री सो गया हो। वहां जो लोग छिपे बैठ थे, उन्होंने फोन से खबर की कि अब यह आदमी सो गया है। लेकिन तुम ठीक पन्द्रह मिनट बाद उसे उठा दो तो ह् म समझेंगे कि तुम्हारे विचार से कुछ हो रहा है। फयादेव ने ठीक पंद्रह मिनट बाद उस आदमी को एक हजार मील दूर से उठा दिया कि उठ जाओ। वह आदमी चौंक कर उठा। मित्र हैरान हो गये। ठीक पंद्रह मिनट बाद वह उठा था। एक आदमी ने जाकर पूछा कि आपको कुछ लगा ? उसने कहा, मैं बड़ा हैरान हुआ। जब मैं आया तो मुझे ऐसा लगा कि कोई मुझसे कह रहा है कि सो जाओ, बहुत थके हुए हो। मैंने समझा कि मैं ही कह रहा हूं। लेकिन अभी अचानक मुझे नींद में आवाज सुनायी पड़ी कि उठ जाओ, इसी वक्त उठ जाओ। और मैं उठ आया हूं।

और अमरीकी प्रयोग

अमरीका की एक प्रयोगशाला में एक छोटा सा प्रयोग चलता था। डिलाबार लेबोरेट्री में उन्होंने एक अद्‌भुत प्रयोग किया। एक आदमी को

बहुत ही संवेदनशील कैमरे के सामने बिठाया गया और उससे कहा गया कि तुम बहुत केन्द्रित रूप से मन में कोई विचार करो – किसी एक चीज का। उस आदमी ने आखें बन्द करके छुरी का विचार किया। वह पांच मिनट तक छुरी का चित्र मन में सोचता रहा। और कैमरे के छोटे प्लेट पर निकालने पर छुरी का चित्र अंकित हो गया।

डिलाबार लेबोरेट्री के इस प्रयोग ने सारी दुनिया को चकित कर दिया कि क्या मन के भीतर सोचे गये विचार का प्रतिबिम्ब भी फोटो कैमरे में पकड़ा जा सकता है? फयादेव के प्रयोग ने सारे रूस में हवा पैदा कर दी कि यह क्या हुआ। क्या एक हजार मील दूर बैठा हुआ आदमी अपनी विचार की तरंगों से किसी को प्रभावित कर सकता है?

मैं आपसे यह कहता हूं, अरविन्द यह प्रयोग कर रहे थे। और हिन्दुस्तान की चेतना को उन्होंने जितना प्रभावित किया है; न गांधी ने और न और किसी ने प्रभावित किया है। लेकिन वह जरा इसोटैरिक है, वह कंस्ट्रक्टिव काम जरा और तरह का है। तो जो लोग बुहारी लगाने को कंस्ट्रक्टिव काम समझते हैं, वे अरविन्द के काम को कंस्ट्रेक्टिव नहीं समझेंगे। लेकिन कितना ही बुहारी लगाओ, उससे क्या होता है?

मनुष्य की चेतना पर असली काम किया जाना जरूरी है। बुद्ध और महावीर रचनात्मक कार्यकर्ता नहीं थे। तो अगर रचनात्मकवादियों ने कभी कोई इतिहास लिखा तो बुद्ध, महावीर और जीसस के नाम उसमें नहीं लिखे जायेंगे। वे कहेंगे कि ये सब फिजूल के लोग थे। इन्होंने कोई रचनात्मक कार्य नहीं किया। न तो किसी कोढ़ी के पैर दाबे, न कोई अस्तपाल बनाया और न सड़कें साफ कीं और न भंगी कालोनी में निवास किया; ये सारे लोग रचनात्मक नहीं थे। और ये सब फिजूल के लोग थे। और इन्होंने अपना समय खराब किया और लोगों का समय खराब किया।

नहीं, ये रचनात्मक काम करने वाले लोग उस अर्थ में दो कौड़ी के भी नहीं हैं, जिन अर्थों में बुद्ध, जीसस, शंकर और महावीर के काम हैं। लेकिन उस काम को देखने के लिए भी समझ चाहिए, आखें चाहिए। उसको पहचानने के लिए भी थोड़ी प्रबुद्ध प्रज्ञा चाहिए।

मैं कोई रचनात्मक कार्य में नहीं लगा हुआ हूं, न लगूंगा।

एकमात्र जरूरत: वैचारिक क्रान्ति

मेरी दृष्टि में विचार की क्रान्ति इस देश की इस समय एकमात्र जरूरत है। तो सारी चेष्टाओं से कोशिश करूंगा कि सोया हुआ विचार जग जाए, सब तरह के सॉक्स दूंगा, सब तरह के धक्के पहुंचाऊंगा, सब तरह से आपको हिलाऊंगा कि नींद टूट जाए। आप नाराज भी होंगे। क्योंकि नींद किसी की भी तोड़ो तो वह नाराज होता है। आप क्रोध से भी भर जायेंगे। आप मुझपर पत्थर भी फेंक सकते हैं, मुझे गालियां भी दे सकते हैं कि हम सो रहे हैं आराम से, सपना देख रहे हैं सुखद और यह आदमी आकर जगाये चला जा रहा है।

लेकिन, इस समय देश को तीव्रता से जगाने वाले कुछ लोगों की जरूरत है। इस नींद से भरे देश में अभी किसी रचनात्मक काम से कुछ न होगा। **अभी एक ही काम की जरूरत है कि देश की चेतना जागे।** और दूसरे काम की जरूरत है कि देश के पास जो लाखों वर्षों की जंजीरें इकट्ठी हो गयी हैं अतीत की, उनको नष्ट करने के लिए कोई भी तीव्र, तीव्रतम आन्दोलन हो कि उन सब जंजीरों को तोड़कर मुल्क की चेतना को हम नये जगत के साथ खड़ा कर दें। लेकिन नहीं, हमारे नेता, हमारे धर्मगुरु, हमारे समाज-सुधारक, वे सब पीछे की कड़ियों से बांधने की कोशिश करते हैं। वे हमे मुक्त नहीं होने देते वहां से।

क्या आपको पता है रूस ने पचास वर्षों में जो काम किया है, वह हम एक हजार वर्षों में नहीं कर सकते। लेकिन रूस ने क्यों किया यह काम? क्या आपको पता है, अमरीका ने तीन सौ वर्षों में जो काम किया है, वह तीन हजार वर्षों की कोई कौम नहीं कर सकती। क्या कारण है लेकिन?

एक ही कारण है जो कि खयाल में नहीं आता है और जिस दिन इस देश के खयाल में आ जायेगा, हम भी उतना ही विकास करने में तत्काल समर्थ हो जायेंगे। और वह कारण यह है कि रूस ने 1917 की क्रान्ति के बाद अपने अतीत से सारे सम्बन्ध विच्छिन्न कर लिये, एकदम से

सम्बन्ध विच्छिन्न कर लिये। अतीत जैसे खत्म हो गया; भविष्य रह गया, वर्तमान रह गया, अतीत जैसे नहीं रहा। 1917 के बाद एक अन्तराल पैदा हो गया; नहीं है कोई अतीत, बस है भविष्य, बस है वर्तमान। और अमरीका के पास तो कोई अतीत है ही नहीं। उनकी तो कौम की उम्र ही तीन सौ वर्ष है। उनके साथ अतीत नहीं है, अतीत का बोझ नहीं है। इसलिए अमरीका की सबसे नयी कौम सबसे ज्यादा समृद्ध, सबसे ज्यादा विकासशील, सबसे ज्यादा जवान हो गयी। उसका और कोई राज नहीं है, उसके पीछे मुर्दों का बोझ नहीं है। हजारों वर्ष की लाशें नहीं हैं, कब्रिस्तानों की लम्बी कथा नहीं है। उसमें अटकाव नहीं है। भविष्य है सिर्फ। और भविष्य की तरफ चेतना को विकास का मौका है।

यह देश भविष्योन्मुख हो

भारत के सामने एक ही रचनात्मक काम है कि अतीत से कैसे भारत का संबंध क्षीण हो, **कैसे भविष्य की तरफ भारत की आखें उन्मुख हों।**

लेकिन हमारे समझदार लोग समझाते हैं कि हमारा अतीत तो सतयुग था, स्वर्णयुग था – राम हुए, बुद्ध हुए, कृष्ण हुए। हमारे सब तीर्थंकार, सब अवतार हो चुके। हमारी सब श्रेष्ठ रचनाएं हो चुकीं, गीता लिखी जा चुकी, बुद्ध-वचन कहे जा चुके, रामायण हो गयी, महाभारत हो गया। सब हो चुका हमारा। हमारा भविष्य? भविष्य हमारा कुछ भी नहीं है। सब अतीत है।

क्या आपको पता है, बूढ़ा आदमी हमेशा अतीत की तरफ देखता है, क्योंकि भविष्य में मौत होती है, और कुछ भी नहीं होता। बच्चे हमेशा भविष्य की तरफ देखते हैं, क्योंकि पीछे कुछ भी अतीत नहीं होता। बच्चे की जो चेतना है, वह हमेशा भविष्योन्मुखी होती है। बूढ़े की जो चेतना है, वह हमेशा अतीतोन्मुखी होती है। बूढ़ा हमेशा पीछे की तरफ देखता है। वह हमेशा पीछे जो हो चुका–जवानी के गीत, जवानी के प्रेम, बचपन की स्मृतियां, वह उनका ही गुणगान करता रहता है, वह उन्हीं में खोया रहता है। उसके आगे-आगे कुछ भी नहीं है।

ध्यान रहे, जो कौम आगे देखना बन्द कर देती है, उस कौम की आत्मा भी बूढ़ी हो जाती है। बूढ़े होने का लक्षण यह है : पीछे देखना। युवा होने का, विकासमान होने का लक्षण यह है : आगे देखना। लेकिन हमारी गर्दन तो पीछे मुड़ी है, और इतने दिनों से मुड़ी है कि उसकी हड्डियां मजबूर होकर जुड़ गयी हैं, पैरालाइज्ड हो गयी हैं। अब आगे की तरफ हम देख नहीं सकते, पीछे मुड़े हुए हैं। जैसे किसी कार में पीछे की तरफ लाइट लगा हो और आगे चल रही हो गाड़ी, वैसी हमारी स्थिति हो गयी है। वह तो भगवान बहुत नासमझ है हिन्दुस्तान के लिए। अगर उसमें थोड़ी भी अक्ल हो तो उसे हमारी आंखें खोपड़ी के पीछे लगानी चाहिएं। आगे लगाने की कोई जरूरत नहीं है। आगे आंखों की कोई आवश्यकता ही नहीं है। आंखें पीछे होनी चाहिए। उस रास्ते को हमें देखने में बड़ा मजा आता है जो रास्ता गुजर चुका और जिस रास्ते पर अब कभी भी गुजरना नहीं हो सकता है। उड़ती हुई धूल को ही देखते रहते हैं पीछे। पर आपको पता नहीं है।

पीछे लौटना असंभव है। लेकिन गांधी जी कहते हैं, रामराज्य चाहिए। पीछे लौटना इम्पॉसिबिलिटी है। कोई कभी पीछे नहीं लौट सकता। समय बचता नहीं है पीछे जाने को; एक क्षण पीछे नहीं लौटा जा सकता। हमेशा आगे ही जाना होता है। जाने का अर्थ है आगे जाना। लेकिन पीछे की याद की जा सकती है। और जितनी ज्यादा आप याद करेंगे पीछे की, उतना आगे चलने वाले कदमों में बाधा पड़ेगी। क्योंकि पीछे की याद करने वाला मन आगे चलने वाले कदमों से टूट जाता है; उसमें विसंगति पैदा हो जाती है। उसमें जोड़ नहीं रह जाता है। आगे चलने वाला मन भी चाहिए आगे चलने वाले पैरों के लिए। पैर आगे चल रहे हैं हिन्दुस्तान के, मन पीछे चल रहा है। यह विसंगति हिन्दुस्तान के प्राणों को जड़ किये दे रही है, नष्ट किये दे रही है।

नहीं, चित को ले जाना है आगे।

रचना के पूर्व विध्वंस चाहिए

एक विध्वंस की जरूरत है। यह शब्द बहुत कठोर मालूम पड़ेगा।

लेकिन हमें पता ही नहीं है कि **जो विध्वंस की क्षमता खो देते हैं, वे सृजन की क्षमता भी खो देते हैं** । विध्वंस का मतलब सिर्फ विध्वंस नहीं होता । विध्वंस का मतलब होता है तोड़ना, ताकि बनाया जा सके । लेकिन क्योंकि हमने तोड़ने की हिम्मत खो दी है, इसलिए हमें बड़ा अच्छा लगता है, जब कोई कहता है कि रचनात्मक कार्यक्रम चाहिए । तब हम बड़े प्रसन्न होते हैं । लेकिन कभी आपने देखा है कि किसी ने कहा हो कि विध्वंसात्मक कार्यक्रम चाहिए । हमें रचनात्मक कार्यक्रम बड़ा अच्छा लगता है ।

लेकिन रचना कौन कर सकते हैं ? वे जो तोड़ सकते हैं ।

मैंने सुना है, एक गांव में बहुत पुराना चर्च था । वह इतना पुराना था कि उस चर्च के भीतर कोई भी जाने से डरता था । वह कभी भी गिर सकता है । हवाएं चलती थीं तो चर्च कंपता था । आकाश में बादल गरजते थे तो चर्च कंपता था । जोर का तूफान आता था तो लगता था, अब गिरा, अब गिरा । अन्धेरी रात में जरा आवाज होती थी तो गांव के लोग बाहर निकल कर देखते थे कि चर्च गिर तो नहीं गया ? अब ऐसे चर्च में कौन प्रार्थना करने जाए ! प्रार्थना करने वाले लोगों ने जाना बन्द कर दिया । तो चर्च की कमेटी ने बहुत विचार किया कि क्या करें । फिर चर्च की कमेटी बुलायी गयी । पादरी और कमेटी और ट्रस्टी सब इकट्ठे हुए । वे भी चर्च के भीतर इकट्ठे नहीं हुए । वे भी चर्च के बाहर इकट्ठे हुए, बाहर उन्होंने बैठक रखी, क्योंकि वहां भीतर कौन जाता ? और नेता तो हमेशा अनुयायियों से ज्यादा होशियार होते हैं । जब अनुयायी तक नहीं जा रहे हैं तो नेता कैसे जा सकता है ?

और यह तो आपको पता है कि नेता हमेशा अनुयायी के पीछे चलते हैं । दिखायी आगे पड़ते हैं, चलते हमेशा पीछे हैं । क्योंकि कोई नेता इतना हिम्मतवर नहीं होता कि अनुयायी के आगे चले । क्योंकि नेता की जान अनुयायी के वोट और समर्थन पर निर्भर रहती है । अगर अनुयायी पीछे से खिसक जाए तो नेता की जान निकल गयी । नेता की अपनी कोई जान होती है ? अनुयायियोंको देखकर चलना पड़ता है । जब अनुयायी तक भीतर नहीं आते तो नेता कैसे भीतर आ सकते हैं ? हालांकि नेता गांव

में जाकर लोगों को समझाते थे कि चर्च में जरूर आना चाहिए । और गांव के लोग मन ही मन में हंसते थे कि बड़ी अद्‌भुत बात है । नेता खुद कभी नहीं जाते, लेकिन हमको समझाते हैं । जैसे हिन्दुस्तान में होता है सब जगह । नेता समझाते हैं, यह करना चाहिए, वह करना चाहिए । जनता सुनती है और ताली पीटती है और समझती है कि नेता भी नहीं करते हैं यह और हमसे कहते हैं, करना चाहिए । लेकिन जनता समझती है कि ठीक है, कभी हम भी नेता हो जायेंगे तो हम भी मंच पर चढ़कर यही कहेंगे कि यह करना चाहिए । करना-वरना तो किसी को है नहीं । एक पाखण्ड, एक धोखा चल रहा है पूरे देश में । वह उस गांव में भी चलता होगा ।

कमेटी बाहर बैठी, और कमेटी सोचने लगी, क्या किया जाए । कोई प्रार्थना करने नहीं आता । बड़े दुख से उन्होंने एक प्रस्ताव पास किया कि पुराने चर्च को गिराना चाहिए । सर्व सम्मति से यह तय किया । लेकिन पुराने को गिराने में बड़ा दुख होता है । मुर्दा लोग पुराने को गिरा ही नहीं सकते । मरे-मराये लोग इतना डरते हैं पुराने को गिराने से ! लेकिन डरते क्यों हैं ?

डरते इसलिए हैं कि नये को बनाने की क्षमता नहीं है । पुराना गिर गया तो फिर क्या होगा ? डरते हैं इसलिए । जिनको नये को बनाने की क्षमता है, वे पुराने को गिराने से कभी भी नहीं डरते । बल्कि वे आतुर होते हैं कि जल्दी पुराना गिरे तो नये का निर्माण किया जा सके । बहुत डरे थे, बहुत दुखी थे । फिर दूसरा प्रस्ताव किया कि नया चर्च बनाना जरूरी है । सर्व सम्मति से उसे भी स्वीकार किया । फिर तीसरा प्रस्ताव जल्दी से स्वीकार किया कि नया चर्च ठीक पुराने जैसा बनायेंगे । नक्शा वही रहेगा, जरा भी फर्क नहीं करेंगे । नींव पुरानी रहेगी, नींव नहीं डालेंगे । नींव तो पुरानी ही रखेंगे, क्योंकि अपने बाप-दादों ने जी नींव डाली थी, उसको हम कैसे बदल सकते हैं ? बाप-दादे तय कर गये हमेशा के लिए नींव, अब कोई नहीं बदल सकता है उसको । बाप-दादे भविष्य को भी तय कर गये । अपने वक्त को तय करते तो ठीक था, लेकिन आनेवाले लोगों की आत्मा को भी कर गये । नींव डाल गये,

अब उस नींव पर ही मकान बनेगा। उन्होंने कहा, हम पुरानी नींव पर ही बनायेंगे। और ध्यान रहे, पुराने दरवाजे, पुरानी ईंटें, पुराना कूड़ा-कबाड़ सबका उपयोग करेंगे। क्योंकि वह साधारण कूड़ा-कचरा नहीं, वह सैक्रेड है, पवित्र है। पूर्वजों के द्वारा लगायी गयी ईंटें हैं। साधारण ईंटें नहीं हैं। हम सब मकान का सामान वही लगाएंगे।

उसी जगह मकान बनायेंगे, उसी नींव पर बनायेंगे। सर्व सम्मति से, बड़ी खुशी से यह भी उन्होंने स्वीकार किया।

और फिर चौथा प्रस्ताव स्वीकार किया, वह भी सर्व सम्मति से, कि जब तक नया न बन जाए, तब तक पुराने को गिरायेंगे नहीं।

पुराना चर्च पड़ा है भारत का

बस, वह पुराना चर्च पड़ा है वहीं का वहीं। अभी भी हवाएं आती हैं, अभी भी प्राण कंपते हैं। वह नया कभी नहीं बनेगा। वह नया कैसे बन सकता है? कहीं पुराने के आधार पर दुनिया में नया बना है? कहीं पुराने के आधार पर दुनिया में नया बना है? यह ऐसे ही है, जैसे एक आदमी बूढ़ा होकर मर जाए और भगवान उसमें नयी आत्मा डाल दें। नहीं, पुराने शरीर में नहीं डाली जा सकती। नयी आत्मा फिर नया शरीर ग्रहण करती है। फिर नया बच्चा, फिर नयी आत्मा पुराने शरीर को दफना देना पड़ता है। पुराने में पुराने के आधार पर नया निर्मित नहीं होता। बल्कि पुराने के आधार पर नया निर्माण करने का वह जो पागल मोह है, उसकी वजह से नया कभी निर्मित नहीं हो पाता। नहीं बना वह नया चर्च। नहीं बनेगा।

ऐसा ही भारत में हो रहा है। हजारों साल से पुराना इकट्ठा होता चला जाता है। वह इतना भारी हो गया है। आज की भारत की आत्मा एकदम बोझिल हो गयी है, उठ नहीं सकती—जैसे एक-एक आदमी के ऊपर हजारों मुर्दे बैठे हों, उसकी खोपड़ी पर मुर्दा का भार लदा हो, अम्बार लगा हो। उसके कारण हमने नये के निर्माण की क्षमता खो दी।

दूसरा महायुद्ध हुआ, जर्मनी तहस-नहस हो गया। रूस के नगर बर्बाद हो गये। जापान मिट्टी में मिल गया। लेकिन जाकर देखो अब। पता भी

नहीं चलेगा कि दूसरा महायुद्ध कभी हुआ। सब फिर निर्मित हो गया। वे जो बर्बाद हो गये, फिर आबाद हो गये—और पहले से ज्यादा अच्छे।

मेरे एक मित्र ने जापान से मुझे लिखा कि नागासाकी और हिरोशिमा तो बिल्कुल मिट्टी हो गये थे, बर्बाद हो गये थे। जहां आज से बीस साल पहले देख कर कोई कहता कि अब कभी यहां पौधे में अंकुर नहीं निकलेगा, अब कभी कोई फूल नहीं खिलेगा, अब कभी यहां कोई प्राण आबाद नहीं हो सकेंगे, अब यहां कोई बस्ती नहीं बसेगी, सब जलकर राख हो गया है, वहां बस्तियां आबाद हो गयी हैं। और उन बस्तियों में रहनेवाले लोग खुशी से यह कहते हैं कि बड़ा अच्छा हुआ, एटम गिर गया, पुराना सब समाप्त हो गया। सब नया हो गया; नये रास्ते हैं, नये मकान हैं, नये स्कूल हैं। पुराना कबड़ा-कबाड़ सब एकदम नष्ट हो गया, जिसको नष्ट करना बहुत मुश्किल था। सारा सब नया हो गया। अद्‌भुत लोग हैं। जवान मालूम होते हैं।

और हम बूढ़े हैं, हमारी बड़ी अद्‌भुत हालत है। महाभारत के बाद कोई युद्ध ही नहीं हुआ है हमारे यहां। लेकिन अभी भी उसका जो नुकसान हुआ है, वह जारी है। वह बदलता नहीं। महाभारत के युद्ध में जो मकान गिर गया होगा, खोज करना, वह अभी भी यहां गिरा हुआ पड़ा होगा। उसमें कोई फर्क नहीं हुआ होगा। क्योंकि महाभारत में युद्ध हो गया है न, उसका दुख हम अभी तक झेल रहे हैं। अब उस युद्ध से कभी छुटकारा होने वाला नहीं है। अब हम हमेशा के लिए बर्बाद ही रहेंगे, महाभारत में युद्ध हुआ न। उसी वजह से सब तकलीफ चल रही है। वह कब हुआ युद्ध?

यह पुराने का मोह नये के निर्माण की क्षमता का विनाश करता है। नये का आग्रह और नये का मोह चाहिए। नये का आमंत्रण चाहिए, नये की खोज चाहिए।

लेकिन नहीं, अगर कोई मुसीबत आ जाए तो खोलो गीता और निकालो उत्तर! अजीब बात है। कोई हमने पागल होने का ठेका ले रखा है? जिन्दगी आज है, समस्या आज खड़ी है। बेचारे कृष्ण को क्यों परेशान कर रहे हो? हमारे पास कोई बुद्धि नहीं है? हम फेस नहीं कर सकते

किसी समस्या को। गीता-माता म खोजने जाते हैं सब कुछ। कृष्ण भी होंगे कहीं तो सिर ठोंकते होंगे आकाश में, कहां से इन मूढ़ों के बीच मैंने उपदेश दिया ? अभी तक पीछा पकड़े हुए हैं। कृष्ण ने तो जिंदगी में एक समस्या खड़ी की अर्जुन के सामने, दिया उत्तर। लेकिन वह उत्तर सबको बांधने वाला नहीं है। लेकिन हम उत्तरों से बंध गये हैं।

समस्या नई तो समाधान भी नया हो

और जब भी मुसीबत आये, मुसीबत हमेशा नयी होती है। **परिस्थितियां हमेशा नयी होती हैं। वे हमेशा नया जवाब मांगती हैं।** और हमारे पास जवाब रेडीमेड, पुराने हैं। नयी परिस्थिति, पुराना जवाब, कोई तालमेल नहीं बैठता है। हम हारते चले जाते हैं।

मैंने सुना है, जापान के एक गांवमें दो मन्दिर थे। एक दक्षिण का मंदिर कहलाता था, एक उत्तर का मन्दिर कहलाता था। दोनों मन्दिरों में झगड़ा था; जैसा कि मन्दिरों में होता है। मन्दिरों में दोस्ती तो कभी होती नहीं, झगड़े ही होते हैं। वे अड्डे ही झगड़े के हैं। और जब तक रहेंगे जमीन पर, तब तक झगड़े जारी रहेंगे। बड़ा झगड़ा था उत्तर के और दक्षिण के मन्दिरों में। इतना झगड़ा था कि पुरोहित एक दूसरे को देखते भी नहीं थे। रास्तों पर से भी नहीं गुजरते थे कि एक दूसरे का मुकाबला न हो जाए।

दोनों पुरोहितों के पास दो छोटे बच्चे थे, सेवा-टहल के लिए, काम-धाम के लिए। दोनों ने समझा रखा था अपने-अपने बच्चे को कि कभी भी भूल के भी दूसरे मन्दिर के बच्चे से बात मत करना। वे हमारे दुश्मन हैं। लेकिन बच्चे तो बच्चे होते हैं, बूढ़े बिगाड़ने की कोशिश भी करते हैं तो एकदम से नहीं बिगाड़ पाते हैं। थोड़ा वक्त लग जाता है। बच्चे कहीं एकदम बूढ़ों की मानते हैं ? और बच्चे अगर बूढ़ों की मान लें तो समझना बच्चे से वे बूढ़े हो गये हैं, अब बच्चे नहीं रहे। वे बच्चे भी नहीं मानते थे। कभी-कभी वे मौके-बेमौके अकेले में मिल जाते थे तो बात कर लेते हैं। बच्चों को भी पुरानी दुश्मनी देने में, ट्रान्सफर करने में थोड़ा समय लगता है बूढ़ों को– समझानें में कि तुम हिन्दू हो, तुम मुसलमान हो, तुम इस मन्दिर के हो, तुम उस मन्दिर के हो। बच्चों को कुछ पता नहीं होता। भगवान इस तरह की बातें सिखाकर भेजता नहीं है। उन बच्चों को नहीं लगता था कि झगड़ा क्या है मन्दिरों में।

एक दिन उत्तर के मन्दिर का बच्चा जा रहा था रास्ते से; दक्षिण के मन्दिर का बच्चा भी वहां से निकला। उसने पूछा कि दोस्त, कहां जा रहे हो ? दक्षिण का पुजारी छत पर से देख रहा था कि दोनों बात कर रहे हैं तो उसको आग लग गयी। हिन्दू-मुसलमान बात करें तो पुजारी को बड़ी आग लग जाती है, पता है आपको ? पुरोहित को बड़ी आग लग जाती है, धर्मगुरु के प्राण जलने लगते हैं, क्योंकि उसका धंन्धा टूटा। अगर हिन्दू-मुस्लिम में बात हो गयी तो उसका धंन्धा गया। उनमें झगड़ा रहे तो धन्धा चलता है, नहीं तो धन्धा नहीं चलता है। यह धन्धा धर्म का पूरे का पूरा झगड़े पर खड़ा है, नहीं तो यह चल नहीं सकता। पुजारी नीचे आया, उसने उस लड़के को बुलाया कि तुमने क्या बात की ? उस लड़के ने कहा, आज तो मैंने बात की और मैं हार भी गया। तो मुझे बड़ा दुख है। मैंने उस लड़के को पूछा कि दोस्त, कहां जा रहे हो ? उसने कहा, जहां हवाएं ले जाएं। यह मेरी समझ में नहीं आया कि अब और क्या बातचीत आगे चलाऊं।

उस पुजारी ने कहा, हमारे इस मन्दिर का कोई आदमी कभी उस मन्दिर से नहीं हारा। यह इतिहास में पहली घटना घटी है कि तू हार कर आया, यह बहुत बड़ी बात है। उसको उत्तर देना जरूरी है, उसको हराना पड़ेगा। यह हमारी इज्जत का सवाल है, यह हमारी पुरखों की इज्जत का सवाल है। यह हजार साल पुराना झगड़ा है। कल तू फिर जाना और उससे पूछना कि कहां जा रहा है और वह कहे कि जहां हवाएं ले जाए तो पूछना कि अगर हवाएं बंद हों तो, तो कहीं जाओगे कि नहीं ? तब वह भी ठप रह जायेगा।

दूसरे दिन लड़का उत्तर तैयार करके गया। और आप पक्का समझ लेना, जो उत्तर तैयार करके जाते हैं उनके पास बुद्धि कभी नहीं होती है। क्योंकि तैयार उत्तर हमेशा मिडियॉकर माइंड का लक्षण है, क्षीण बुद्धि का लक्षण है। बुद्धिमान आदमी को सवाल सामने खड़ा होता है, उत्तर

आता है। आना चाहिए। तैयार उत्तर का क्या मतलब होता है? जब अभी सवाल ही नहीं उठा तो उत्तर कैसे हो सकता है? लेकिन हम सभी उत्तर तैयार करने वाले लोग हैं। वह लड़का भी उत्तर कण्ठस्थ करके बिल्कुल चला गया कि पूछूंगा आज। खड़ा रहा रास्ते पर; निकला वह लड़का। पूछा, कहो दोस्त कहां जा रहे हो? लेकिन वह लड़का बड़ा बेईमान था। उसने कहा कि जहां पैर ले जाएं। अब बड़ी मुश्किल हो गयी। बंधा हुआ उत्तर, वह गीता-माता का उत्तर था। अब क्या होगा? अब वह फिर खड़ा रह गया। गुरु ऊपर से देखता था, वह फिर हार गया। लौट कर आया तो पूछा क्या हुआ? उसने कहा, वह लड़का तो बहुत बेईमान मालूम होता है। बदल गया वह तो। उस पुजारी ने कहा, उस मन्दिर के लोग सदा से बेईमान रहे हैं। उनका कोई भरोसा नहीं है। सुबह कुछ कहेंगे, सांझ कुछ कहने लगते हैं। लेकिन उसे हराना जरूरी है। उसने क्या कहा? गुरुने पूछा। वह लड़का तो कहने लगा, जहां पैर ले जाएं। अब मैं क्या कहता, उत्तर तो तैयार था। उस उत्तर की कोई संगति न थी। उसने कहा, कल फिर से पूछना। जब वह लड़का कहे कि जहां पैर ले जाएं, तो कहना, भगवान न करे कि लंगड़े हो जाओ। अगर लंगड़े हो जाओगे तो कहीं जाओगे कि नहीं। वह लड़का खुश हुआ, लेकिन फिर भी उसे पता नहीं था कि फिर वही भूल कर रहा है कल वाली। फिर तैयार उत्तर! दूसरे दिन वह फिर खड़ा हो गया रास्ते पर जाकर। उत्तर तैयार है, घोख रहा है मन में। आया है लड़का दूसरे मन्दिर का, पूछा: कहां जा रहे हो? उसने कहा, सब्जी लेने बाजार जा रहा हूं।

भारत को उसके अतीत से निकालो

तैयार उत्तर हमेशा फिजूल हो जाते हैं। और जिन कौमों के पास उत्तर तैयार हैं, वे सारी कौमें नपुंसक हो जाती हैं। जिन्दगी मांगती है सीधा एनकाउंटर, जिन्दगी मांगती है मुकाबला। जिन्दगी कहती है आओ, नयी हैं परिस्थितियां, खड़ी करो अपनी चेतना को; नयी परिस्थितियों का उत्तर दो। और नयी परिस्थितियों का उत्तर तभी दिया जा सकता है, जब पुराने उत्तर मन पर बोझिल न हों।

लेकिन यहां मुल्क का सारा चित बोझिल है। महात्मा, साधु, संन्यासी, तीर्थंकर, अवतार इतने हो चुके हैं हमारे, और वे सब उत्तर दे गये हैं। और सबके उत्तर हमारे सिर पर बैठे हुए हैं। हमारा अपना कोई उत्तर नहीं है। हमारा अपना कोई प्रेजेंस, हमारा कोई वर्तमान व्यक्तित्व नहीं है। हमारी कौम की आज कोई वर्तमान आत्मा नहीं है। और यह सारी आत्मा सिर्फ रटे हुए उत्तर दोहरा रही है। इसलिए हम दुनिया में पिछड़ते चले जाते हैं, रोज पिछड़ते चले जाते हैं। और जब पिछड़ जाते हैं, तब भी हम अपनी किताब में से सोचते हैं कि जरूर हमने कुछ गलत याद कर लिया होगा। किताब तो गलत हो नहीं सकती। फिर उसी किताब में खोज के नयी व्याख्या निकालते हैं कि नहीं, यह मतलब रहा होगा, इसीलिए हार गये।

और जिन्दगी रोज बदलती जाती है, जिन्दगी बडी बेईमान है। जिन्दगी रुकती नहीं, जिन्दगी ठहरी नहीं है, जिन्दगी भागती चली जाती है। जैसे गंगा रोज बदल रही है। जो पानी कल था गंगा में, वह आज नहीं है। जो अभी था, वह अभी नहीं है। हेराक्लतु ने कहा है कि एक ही नदी में दुबारा उत्तर नहीं सकते: यू कैननॉट स्टेप इन दि सेम रिवर ट्वाइस। उसने ठीक कहा है; जिन्दगी की नदी में भी दुबारा नहीं उत्तर सकते हो। जो होने को था, वह हो चुका। जो नहीं हुआ है, वह होगा। इसलिए जो हो चुके हैं उत्तर, वे उसके लिए जो नहीं हुए हैं कारगर नहीं होंगे।

इसलिएभारत पुराना पड़ता जाता है; क्योंकि उत्तर पुराने हैं उसके पास।

कब छुटाकारा होगा हमारा शास्त्रों से? कब छुटकारा होगा अतीत से? कब मुक्त होंगे हम पीछे से? और कब हम जागेंगे और देखेंगे भविष्य को?

इसका मतलब यह नहीं है कि मैं कहता हूं कि गीता मत पढ़ना। इसका यह मतलब नहीं है कि मैं कहता हूं कि रामायण मत पढ़ना। इसका यह मतलब नहीं है कि मैं कहता हूं कि गांधी को मत समझना। इसका यह मतलब है कि समझना, पर उत्तर किसी के कंठस्थ मत करना। उत्तर अपने आने देना और जैसा युग, जैसा समय और जैसी परिस्थिति है,

उसके अनुकूल अपने चित्त को दर्पण बनाना कि वह हर उत्तर ला सके, हर उत्तर ला सके। बैलगाडियों के जमाने में दिये गये उत्तर अंतरिक्षयान के जमाने में सही साबित नहीं हो सकते। लेकिन कुछ लोग जिद्द करेंगे कि हम बैलगाड़ी के जमाने से आगे नहीं जाएंगे, हमारे पुरखों ने बैलगाड़ियों में बैठकर उत्तर दिये थे, हमने तो कसम खा ली है कि हम पुरखों के आगे नहीं जाऐंगे। हमने तो लक्ष्मण-रेखा खींच दी है, उसके आगे सीता, अब मत निकलना। सारे मुल्क को सीता बनाये हुए हैं ये पुरखे और लक्ष्मण-रेखा खींचे हुए हैं कि आगे मत जाना। इससे आगे जाओगे तो बड़ा खतरा हो जाएगा। और देखो, सीता गयी थी तो कितने खतरे में पड़ गयी थी। इसलिए जाना मत आगे रेखा से। सारी दुनिया सब रेखाओं को छोड़कर अंतरिक्ष की यात्राओं पर निकल जायेगी और तुम पिछड़ जाना इस जमीन पर। तुम इसी गन्दी जमीन पर रह जाना। और न मालूम सारी दुनिया अंतरिक्ष पर कितनी दूर-दूर के लोगों को खोजेगी, सत्यों के न मालूम कितनी अनजान पर्तें उठायेगी, न मालूम सत्य की कितनी प्रतिमाओं को उघाड़ेगी, न मालूम कितने दुस्साहस के काम करेगी? न मालूम कितने एडवेंचर करेंगे दूसरी दुनिया के बच्चे, दूसरे मुल्कों के बच्चे? और हमारे बच्चे? हमारे बच्चे क्या कर सकते हैं? हनुमान जी के मंदिर पर नारियल फोड़ेंगे। क्या करेंगे? जब तुम चांद-तारे पर चले जाना दूसरे मुल्कों के लोगो, तब भी हमारे बच्चे हनुमान जी के मन्दिर पर नारियल फोड़ते रहेंगे और किसी सड़क के किनारे बैठे बेवकूफों से हाथ की रेखाएं दिखलाते रहेंगे और ताबीज बांधते रहेंगे। क्या हमारे बच्चे यही करते रहेंगे?

यह बहुत हो चुका। यह बहुत दुर्भाग्यपूर्ण है। यह नहीं होना चाहिए। यह नहीं होने दिया जा सकता है। लेकिन कौन रोकेगा? कौन इस धारा को तोड़ेगा? कौन इस बंधे प्रवाह को मिटायेगा? कौन इन जंजीरों को तोड़ेगा? मन बहुत शंकित हो उठता है। कौन करेगा यह?

लेकिन एक आशा बंधती है, एक आशा बंधती है कि शायद वक्त आ गया है कि हमारी चेतना इसके लिए तैयार हो। और वक्त शायद इसलिए आ गया है कि या तो हमें तैयार होना होगा या हमें मिट जाना

होगा। **दो के अतिरिक्त तीसरा कोई उपाय नहीं रहा है।** शायद इतने दबाव में, इतने प्रेशर में, मिटने की स्थिति में शायद हमें होश आ जाए, शायद हम जाग जाएं, शायद हम आंख खोलकर देखें कि दुनिया कहां चली गयी, इतिहास कहां चला गया? हम कंटेम्पोरेरी नहीं हैं, सम-सामयिक नहीं है।

इस भूल में मत रहना कि हम बीसवीं सदी में रह रहे हैं। हम बीसवीं सदी में नहीं रह रहे हैं। हम कोई दस सदियां पीछे हैं। हम दसवीं सदी में होंगे। और हमारे बीच भी जो दसवीं सदी में होंगे, वे बड़े प्रोग्रेसिव मालूम पड़ेंगे; क्योंकि हमारे बीच पांचवीं सदी और पहली सदी के लोग भी हैं। हम इस जगत में आज के काल में कंटेम्प्रेरी नहीं हैं और इसलिए हमें जितनी पिछड़ी बात हो उतनी ज्यादा अपील करती है जिसका कोई हिसाब नहीं है। क्योंकि हमारा चित्त पिछड़ा हुआ है।

इसलिए अगर विनोबा पैदल चलते हैं तो हमारा हृदय गद्‌गद हो जाता है कि धन्यभाग, कितना अच्छा किया जा रहा है। वे अन्तरिक्ष यानों पर यात्रा करेंगे और तुम पैदल चलने वाले महात्मा की इसलिए प्रशंसा करोगे कि वह पैदल चलता है। पिछड़ जाओगे,, मर जाओगे, बच नहीं सकोगे। भविष्य तुम्हारे साथ खड़ा नहीं होगा। कोई पैदल चले इसकी खुशी है, मजे की बात है। फायदे की बात है विनोबा के लिए पैदल चलना, स्वास्थ्यपूर्ण है, लेकिन पैदल चलने का आदर दुर्भाग्यपूर्ण है। वह आदर गलत है, वह पिछड़ेपन का आदर है। जिन्दगी को नये-नये रास्तों पर ले जाने का द्वार उससे नहीं खुलता।

मैं वह कर रहा हूं

यह हमारी कठिनाई कब छूटेगी?

एक ही रास्ता दिखता है कि लोगों के मन को झकझोरा जाए, लोगों को हिलाया जाए, उनकी नींद तोड़ी जाए, उनको चोट की जाए कि शायद चोट से वे तिलमिला उठें। लेकिन कुछ लोग इतने मर गये हैं कि चोट ही नहीं लगती। वे तिलमिलाते भी नहीं है। वे गुस्से में भी नहीं मरते, ऐसी कुछ मौत आ गयी है। गुस्से में भी मर जाए तो भी

कुछ हो जाए। इसकी जरूरत है। वह मैं कर रहा हूं। जो मुझे रचनात्मक मालूम पड़ता है, वह मैं कर रहा हूं। जो मुझे सेवा मालूम पड़ती है, वह मैं कर रहा हूं।

लेकिन सेवा के नाम से और रचना के नाम से जो सब चल रहा है, वह मैं नहीं कर रहा हूं। नहीं कर रहा हूं, इसलिए कि उसे न मैं सेवा मानता हूं और न रचना मानता हूं।

विचार इस देश में जग जाए, इसके लिए जो भी किया जा सकता है, वह सब किया जान जरूरी और अत्यन्त आवश्यक है।

ये थोड़ी सी बातें मैंने कहीं। मेरी बातों को इतना प्रेम और शान्ति से सुना, इससे बहुत अनुग्रहीत हूं और अन्त में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

■■

गांधीवाद ही नहीं, वाद मात्र के विरोध में हूं

[बडौदा में 13 फरवरी '69 को भगवान श्री के सान्निध्य में एक प्रेस-सम्मेलन हुआ, जिसमें पत्रकारों ने उनको प्रश्न पूछे और भगवान श्री ने उनके समाधान दिये। टेपरेकॉर्डर (ध्वनि-मुद्रक) में कई प्रश्न स्पष्ट नही आ सके, लेकिन भगवान् के उत्तरों से उनके रूप भी झलक जाते हैं।]

प्रश्नकर्ता : आपके प्रवचनों से गुजरात में एक हलचल मच गयी है। कृपया इस सम्बन्ध में आप खुलासा करें – जैसे गांधी जी के बारे में या और किसी व्यक्ति के बारे में – हालांकि न आपने गांधी जी की निन्दा की है, और न ही क्राइस्ट की। फिर कुछ गलतफहमी हो गयी हैं सारे गुजरात में कि आपने गांधी जी निन्दा की या किसी अन्य व्यक्ति की निन्दा की। कृपया इसका स्पष्टीकरण करें।

भगवान् रजनीश : किसी व्यक्ति की निन्दा करने का मेरे मन में कोई सवाल ही नहीं है। और व्यक्ति की निन्दा का प्रयोजन भी नहीं है। वाद के लिए मेरे मन में बहुत निन्दा है। वाद, सम्प्रदाय, चाहे वह राजनीतिक हो, चाहे धार्मिक हो, सब तरह के बाद टूटने चाहिए, और मनुष्य का मन सोचने-समझने के लिए मुक्त होना चाहिए।

मेरा विरोध वाद से है

रूस में जाऊंगा तो मार्क्सवाद का विरोध करूंगा; हिन्दुस्तान में गांधीवाद का विरोध करूंगा। गांधीवाद से भी विरोध नहीं है; वाद से मेरा विरोध है।

अब तक दुनिया में जैसा कि हुआ है, चाहे क्रान्तियां हुई हैं, सब क्रान्तियां वाद-आधारित हुई हैं। इसलिए सारी क्रांतियां असफल गयीं, कोई क्रांति सफल नहीं हो सकी। **और प्रत्येक वाद मनुष्य के मन को मुक्त करने में सहयोगी नहीं हुआ, बांधने का कारण बना। और जरूरत इस बात की है कि मनुष्य की समझ इतनी मुक्त हो, समझ विकसित होनी चाहिए, और इतनी विकसित होनी चाहिए कि हम प्रत्येक समस्या का सीधा साक्षात्कार कर सकें।**

गांधी का उपयोग मेरे लिए यह समझ में आता है कि गांधी को हम समझ कर इस योग्य बनें कि देश के सामने जो समस्या आये, उसका हम साक्षात कर सकें। लेकिन हमेशा यह होता है कि वाद से घिरा हुआ जो मन है, वह समस्या का सीधा साक्षात्कार कभी नहीं करता; उसका वाद ने उत्तर पहले दे रखा है। समस्या नयी है, उत्तर पुराना है। क्योंकि उत्तर पुराने उत्तर को थोपने की कोशिश करता है समस्या के ऊपर। उससे समस्या तो हल नहीं होती, और उलझती चली जाती है।

प्रत्येक महापुरुष अपनी समस्या का साक्षात्कार करने की कोशिश करता है; लेकिन न तो वह समय रह जाता है पीछे, न वह समस्या रह जाती है। अनुयायी उस समस्या और समाधान को लेकर पीछे की तरफ खींचने में उपद्रव खड़ा करते हैं। उससे नुकसान पहुंचता है। गांधी ने अपनी समझ, अपनी सूझ के अनुसार किन्हीं स्थितियों में कुछ प्रयोग किये; जैसे कि चर्खे का प्रयोग था। गांधी की समझ के लिए जो भी उपयोगी मालूम पड़ा, उन्होंने किया। शायद उन स्थितियों में कुछ और किया जाना कठिन भी था। लेकिन अब खादी और चर्खा सिद्धान्त की तरह हमारे पीछे पड़ गया है। और आने वाले समय में हम उसका उपयोग आर्थिक सिद्धांन्त की तरह करना चाहेंगे तो हम नुकसान पहुंचाते हैं मुल्क को।

इसीलिए मैंने कहा है कि अगर हम वाद को पकड़ कर चलते हैं तो हम देश की हत्या कर देते हैं। और लोगों ने कहना शुरू कर दिया कि मैंने कह दिया कि गांधी जी देश के हत्यारे हैं। मैंने कहा कि अगर गांधी के वाद को हम आगे भी मानते हैं तो देश की हत्या हो जायेगी।

और यह सवाल गांधी के वाद का ही नहीं है, किसी भी वाद के लिए है; वह अपने समय की और परिस्थिति का उत्तर होता है। समय और परिस्थिति रोज बदल जाती है और वाद कभी बदलता नहीं है। वाद जिद्द करता है कि हम वही रहेंगे, जैसे हम थे। और हर नयी परिस्थिति म हर पुराना वाद उपद्रव का कारण होता है। इसलिए जिस देश को जितनी शीघ्रता से विकसित होना हो, उसको वाद से उतना मुक्त होना चाहिए। समझ विकसित होनी चाहिए। और हम नयी परिस्थिति का सामना कर सकें, उसके योग्य हमें बनना चाहिए। जैसे मेरा कहना है कि आने वाले भविष्य में भारत में टेक्नोलॉजी का जितना विकास हो उतना हितकर है। और अगर हम चर्खा और खादी जैसी बातों पर अटकते हैं तो वे टेक्नोलॉजी के विरोध की बातें हैं, उससे टेक्नोलॉजी विकसित नहीं होती। वे टेक्नोलॉजी को नुकसान पहुंचाते हैं।

हर महापुरुष परिस्थिति का उत्तर होता है। परिस्थिति बदल जाती है और महापुरुष मर जाता है। लेकिन उत्तर पकड़ जाता है। और फिर हम उत्तर को थोपते चले जाते हैं। और अगर उत्तर का कोई विरोध करे तो हम समझते हैं कि उस महापुरुष का विरोध हो गया। यह इतनी नासमझी की बात है, जिसका कोई हिसाब नहीं है।

प्रश्नकर्ता : देश में जो प्रगति अवरुद्ध हो गयी है और अनेक समस्याएं खड़ी हो गयी हैं, उसके लिए क्या करना चाहिए ? और आपने बताया कि मन से सोचकर समस्या का हल करना चाहिए, एक रास्ता आपने बताया। क्या और कोई रास्ते हैं ?

भगवान् रजनीश : असल बात यह है, एक-एक परिस्थिति का सवाल नहीं है, परिस्थिति का सामना करने की वृत्ति का सवाल है। वह मुल्क के पास नहीं है। मुल्क के पास नहीं है। मुल्क के पास समस्याएं हैं, परिस्थितियां हैं, लेकिन कैसा व्यक्तित्व इन परिस्थितियों का मुकाबला कर सकता है, वह व्यक्तित्व नहीं है मुल्क के पास। और उस व्यक्तित्व को बनाने की न ही कोई चेष्टा करते हैं और न ही हमने तीन हजार वर्षों में इसके आधार रखे कि वह व्यक्तित्व बने। बल्कि वह व्यक्तित्व न बने, इसकी हमने सारी कोशिश की है। और अब हम क्या करते हैं कि

हम एक-एक परिस्थिति का मुकाबला करने की कोशिश करते हैं जो कि गलत है। इससे वह, जो आप कहते हैं, उलझन पैदा हो गयी है।

समस्या के साक्षात्कार की क्षमता चाहिए

यानी मामला ऐसा है कि एक बच्चे के सामने गणित के पचास प्रश्न रख दिए। वह एक प्रश्न को हल करने की कोशिश करता है और पूछता है, इसको हल कैसे करूं। इसको हल कर लेता है तो दूसरा उसके सामने रख देते हैं और उसके सामने सवाल उठता है कि कैसे हल करूं। सवाल असल में एक सवाल हल करने का नहीं है, सवाल गणित को हल करने की बुद्धि पैदा करने का है। यह एक-एक पार्टीकुलर सवाल नहीं है महत्वपूर्ण, **महत्वपूर्ण मुल्क के व्यक्तित्व में सवालों को हल करने की क्षमता का है।** राजनीतिज्ञ को सवाल होता है एक-एक सामने, कि आज यह भाषा का सवाल आ गया है, इसको हल कैसे करें, कल प्रांत का सवाल आ गया, इसको कैसे हल करें, परसों वह सवाल आ गया। ये सवाल रोज आते रहेंगे। अगर आप हल भी कर लेंगे तो पच्चीस दूसरे सवाल आ जायेंगे।

असली सवाल यह है कि मुल्क के पास सवालों का साक्षात्कार करने की, हल करने की प्रतिभा नहीं है। और प्रतिभा को विकसित करने के जो उपाय हैं, उनका हम कोई उपयोग नहीं कर रहे हैं। अब जैसे मेरा खयाल है, मेरा कहना यह है कि प्रतिभा को विकसित करने का पहला तो उपाय यह है कि भारत के मन को सब तरह के अन्धविश्वास से मुक्त करना चाहिए। क्योंकि अन्धविश्वास सोचने नहीं देता है।

वैज्ञानिक दृष्टि पैदा की जानी चाहिए। भारत के पास कोई वैज्ञानिक दृष्टि नहीं है। तो किसी भी सवाल से हम जूझते हैं, हमारी दृष्टि बिलकुल अवैज्ञानिक है। उदाहरण के लिए, जिनकी वजह से विवाद सारे खड़े हो गए हैं, जैसे मेरा कहना है कि भारत के सामने पिछले पचास वर्षों में सवाल था हिन्दू-मुसलमान का। हमने उस सवाल के साथ जो भी व्यवहार किया, बिल्कुल अवैज्ञानिक था। उसके परिणाम में हिंदुस्तान-पाकिस्तान बंटा। और वह सवाल खत्म भी नहीं

हुआ। वह सवाल अपनी जगह खड़ा है और पूरा मुल्क बंट गया। वह एक अलग बेवकूफी हुई। और वह पूरा मुल्क बंटकर हमेशा के लिए सवाल खड़ा कर गया जो कि अब चलेगा, जिसका कि अन्त नहीं सूझता कि अब क्या होगा। तो हमने उस सवाल के साथ जो भी किया, वह अवैज्ञानिक था। यही मेरा कहना है, और यही सारी की सारी बातें लोगों को लगती है कि मैंने गांधी जी के खिलाफ कह दिया। गांधीजी से उनका कुछ लेना-देना नहीं है।

लेकिन हमने पचास साल में क्या किया, वह हमें सोचना पड़ेगा। मेरा कहना है, हिन्दू-मुस्लिम एकता की बात उठाकर हमने मुल्क को नुकसान पहुंचाया। सवाल था **भारतीय एकता का,** सवाल हिन्दू-मुस्लिम एकता का था ही नहीं कभी। लेकिन जैसे ही हमने कहा, हिंदू-मुस्लिम यूनिटी, वैसे ही हमने हिंदू और मुसलमान को बहुत महत्व दे दिया; जो महत्व अतिशय हो गया। और जितना हम यह कहते गये, हिन्दू-मुस्लिम एकता, उतना मुसलमान को भी दिखायी पड़ने लगा कि मेरे बिना कुछ होता नहीं, मैं महत्वपूर्ण हूं। हमने एक सिग्नीफिकेंस दिया मुसलमान को और हिन्दू को, और दोनों को हमने उपद्रव बना लिया। जरूरत इस बात की थी कि हम कहते : **भारतीय एकता;** न हिन्दू का सवाल है, न मुसलमान का। और हम इस बात पर जोर देते कि जो आदमी हिन्दू होने का दावा करता है और मुसलमान होने का दावा करता है, वह भारतीय एकता को तोड़ता है। तो हमने उलटा किया।

हमने कहा, हिन्दू-मुस्लिम दोनों भाई-भाई हैं, अल्ला-ईश्वर तेरे नाम हैं। और हमने जो-जो प्रक्रिया की, उसमें हमने हिन्दू-मुस्लिम को मिटाने की कोशिश नहीं की, बल्कि हिन्दू-मुस्लिम को स्वीकार कर लिया, उनको स्वीकृति दे दी। फिर उनको स्वीकार करके मिलाने की कोशिश की। और मेरा कहना यह है कि यह स्वीकृति खतरनाक हो गयी, यह महंगी पड़ गयी। और गांधी जैसे भले आदमी भी इस भूल को नहीं पकड़ पाये और अपने को हिन्दू कहते रहे निरन्तर कि मैं हिन्दू हूं। अगर गांधी ने भी यह हिम्मत कर ली होती वह कहने की कि **मैं सिर्फ आदमी हूं और मैं भारतीय हूं,** मैं हिन्दू-मुस्लिम नहीं हूं तो

हिंदुस्तान का इतिहास दूसरा होता। लेकिन वह नहीं हो सका। और जो हमने कोशिश की, वह तोड़ने वाली सिद्ध हुई, वह कोशिश बनाने वाली नहीं हो पायी।

अब भी वह हाल है। अब भी हम वही सब कहे चले जाते हैं। और दूसरी समस्याएं खड़ी होती हैं तो उनके सामने भी हम वही पुराने हल मौजूद करते हैं।

भाग्य नहीं, पुरुषार्थ जगाना है

कुल दो–तीन हजार साल से भारत की कुछ दृष्टियां हैं, जो उसको सवाल हल नहीं करने देती हैं। जैसे भारता मानता है कि जो भी हो रहा है, वह भाग्य से हो रहा है। और जो कौम भी मानती है कि भाग्य से हो रहा है, वह परिस्थितियों का मुकाबला करने में असमर्थ हो जाती है। वह कैसे समर्थ हो सकती है? परिस्थिति सामने आ जाती है और वह भाग्य को मानने वाली कौम है! जब तक हिंदुस्तान के दिमाग से भाग्य की धारणा नहीं मिटती, तब तक पुरुषार्थ की संभावना पैदा नहीं हो सकती। यानी मेरा कहना है कि यह वेसिक सवाल है। यह कोई आज की राजनीति का सवाल नहीं है, कल की राजनीति का सवाल नहीं है। **भारत की प्रतिभा को भाग्यवादी होने से बचाने की जरूरत है।** लेकिन बच्चों को हम आज भी भाग्यवाद के खिलाफ कुछ भी नहीं समझा रहे हैं। और हम चाहते हैं कि समस्याएं हल हो जाएं।

अगर बीस साल तक आने वाली पीढ़ी को हम भाग्यवाद के खिलाफ समझा सकें और पुरुषार्थ के लिए तैयार कर सकें और आने वाली पीढ़ी के दिमाग में यह बात बिठायी जा सके कि जो भी हो रहा है वह अन्यथा हो सकता है, बदला जा सकता है, वह हमारे हाथ में है, और कोई भगवान तय नहीं कर रहा है, भाग्य तय नहीं कर रहा है, तो बीस साल के भीतर भारत की प्रतिभा में खूबी आ जायेगी कि वह समस्याओं का सामना कर सके। पश्चिम में समस्या खड़ी होती है तो वे उसको हल करने की कोशिश करते हैं। हमारे सामने समस्या खड़ी होती है तो हम उसके कारण खोज लेते हैं और इस पर खत्म हो जाती है बात कि समस्या क्यों है। वह कैसे बदलेगी, यह सवाल नहीं है।

अगर भारत गुलाम हो गया तो हम कहते हैं फूट थी, इसलिए गुलाम हो गया। बस जैसे कि एक्सप्लेनेशन मिल गया, कारण मिल गया और बात खत्म हो गयी। और एक हजार साल हम गुलाम नहीं रहते कभी भी; वह हमारा भाग्यवादी दृष्टिकोण था, जिसने हमको गुलाम रखा। फूट-वूट का कारण नहीं है। मेरी अपनी समझ यह है; क्योंकि जितनी फूट हममें है, दुनिया की सब कौमों में है। कोई फूट हममें ही है, ऐसा नहीं है। प्रोटेस्टैंट और कैथोलिक उतना ही लड़ते हैं जितना हिन्दू-मुसलमान लड़ते हैं। यह सारी दुनिया लड़ती है। फूट हममें ही नहीं है। हममें और उनमें एक ही फर्क है कि वे चीजों को बदलने का विश्वास रखते हैं कि हमारे हाथ में है, और हम मानते हैं कि चीजें हो रही हैं, हमारे हाथ में कुछ भी नहीं है।

और आज भी साधु-संन्यासी समझाये चला जा रहा है; यही बातें समझा रहा है गांव-गांव में वह। अब मेरा कहना यह है कि पचास साल के लिए हिन्दुस्तान को साधु-सन्तों से बचाने की कोशिश करनी चाहिए, नहीं तो हिन्दुस्तान मर जाएगा। यह खतरे की बात है, यह झगड़े की बात है। मेरा कहना यह है कि साधु, जिसको संन्यास लेना है वह छोड़-कर चला जाए, जंगल में बैठे, जिसको जाना हो वह वहां जाए; लेकिन अब गांवों में साधु-संन्यासी को शिक्षा देने का उपाय बन्द किया जाना चाहिए। जिसकी मर्जी हो, संन्यास लेना हो वह जंगल में जाए, उनके पास बैठे, सीखे, कोई मनाही नहीं है। लेकिन अब भारत की जो पिटी पिटायी परम्परा है, उसको यहां सिखाने का स्रोत बन्द होना चाहिए। नहीं तो हम फिर नयी पीढ़ी को बिगाड़ जाते हैं।

अब एक स्कूल का लड़का है, वह भी जाकर ज्योतिषी को चार आना देकर हाथ दिखलाता है। यह भारत के भविष्य के लिए अच्छा नहीं है। यह एक स्कूल का बच्चा है, यह स्कूल में पढ़ने वाला बच्चा है, एम. एस. सी. पढ़ता है, लेकिन परीक्षा के वक्त हनुमान जी पर जाकर फूल चढ़ाता है। इससे भारत की प्रतिभा विकसित नहीं हो पायेगी। इससे भारत की प्रतिभा को नुकसान पहुंच रहा है।

इसलिए मेरे सामने इमिडिएट सवाल नहीं है, तात्कालिक सवाल नहीं

है कि यह सवाल कैसे हल हो। मेरे सामने सवाल यह है कि हमारा माइन्ड किसी सवाल को हल क्यों नहीं कर पाता है और फिर हम उसमें उलझ जाते हैं। हल होता नहीं है, सवाल खड़ा रहता है, हम उलझते चले जाते हैं। यह तो एक साइंटिफिक आउटलुक, **वैज्ञानिक दृष्टि पैदा करने का सवाल है**। सारे मुल्क के विचारशील लोगों को इस दिशा में लग जाना चाहिए कि वह साइंटिफिक आउटलुक कैसे पैदा हो।

अभी मैं कलकत्ते में था। एक मित्र डाक्टर के यहां ठहरा। डाक्टर एफ. आर. सी. एस. है, पढ़ा-लिखा आदमी है, योरोप से लौटा हुआ है। मैं घर से निकलने लगा तो उसकी लड़की को छींक आ गयी और उसने कहा कि दो मिनट रुक जाएं। तो मैंने उससे कहा, तुम तो ड़ाक्टर हो, तुम्हें समझना चाहिए कि छींक क्यों आती है? तुम भी नहीं समझते तो और लोग कैसे समझ सकते हैं? उन्होंने कहा, लेकिन हर्ज क्या है, दो मिनिट रुक गये तो हर्ज क्या है। अब यह जो माइन्ड है, यह मुल्क की समस्याएं हल नहीं होने देगा, यह नहीं होने देगा। क्योंकि समस्या के लिए संघर्ष करने वाला मन चाहिए, जो चीजों को बदलने की सोचे, तोड़ने की सोचे और नया करने की सोचे। वह हमारे पास नहीं है।

प्रश्नकर्ता: (टेप में प्रश्नकर्ता की आवाज बहुत अस्पष्ट है, शायद वे कहना चाहते हैं कि समाज पिछड़ा हुआ है, इसलिए आपकी बातों से हलचल हुई।) इस पिछड़ेपन से निकलने का उपाय क्या है?

भगवान् रजनीश : यह तो ठीक कहते हैं। समाज तो तैयार है ही नहीं। मुझे कोई आश्चर्य नहीं हुआ जो हलचल मची उससे। वह तो मैं जानता था कि वह मचेगी। आश्चर्य मुझे इससे हुआ कि जो लोग मेरे पक्ष में हैं, उनकी हिम्मत मुझे बिलकुल नहीं मालूम पड़ती। मेरे विपक्ष में जिन लोगों ने कहा, उन्होंने तो हिम्मत से कहा, उन्होंने हलचल भी मचायी। लेकिन जो मेरे पक्ष में हैं, वे प्राइवेट रूप से मुझसे कहते हैं कि हम आपके पक्ष में हैं, वे मुझे पत्र लिखते हैं, लेकिन खुले में वे कहने की तैयारी में नहीं हैं। आश्चर्य मुझे इतना ही होता है। मैं तो चाहता हूं कि हलचल मच जाए। इसमें क्या हर्ज होने वाला है? मुझे दस-पच्चीस गाली पड़ती है, इससे क्या बनता-बिगड़ता है? इस मुल्क में कुछ लोगों को गाली खाने के लिए तैयार होना चाहिए, नहीं तो हलचल होगी ही नहीं। इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता।

यहाँ विचारकों में साहस की कमी है

आश्चर्य मुझे इससे हुआ कि जिन लोगों से हम आशा कर सकते हैं कि वे सोचते हैं, विचारते हैं, इटेंलेक्युल हैं, वे भी हिम्मत करके बाहर पक्ष में खड़े हो सकते हैं, वह मुझे नहीं दिखायी पड़ा। वह जो प्रतिक्रियावादी वर्ग था, वह तो शोरगुल मचायेगा ही जोर से, इसमें कोई शक-सुबहा नहीं है। वह तो मचाना चाहिए, न मचाता तो आश्चर्य होता। वह तो बिल्कुल ही ठीक हुआ, उसमें कोई अड़चन नहीं हुई। और वह चीजों को तोड़-मरोड़-कर भी मचायेगा, क्योंकि उसके सिवाय मचा नहीं सकता। क्योंकि जो मैं कह रहा हूं, सीधे-सीधे उसका विरोध नहीं किया जा सकता है। उसका तो उपाय एक ही है कि प्रसंग के बाहर मेरी बातों को निकाल कर और उनको नये अर्थ देकर उसका विरोध किया जाए। वह तो मेरी समझ में आता है कि हमेशा का रास्ता वह है। इससे कोई हैरानी नहीं हुई। हैरानी मुझे इससे हुई कि यह जो विरोध में इतना शोरगुल मचा, इसके विरोध में एक इंटेलेक्चुअल, सोच-विचारशील लोगों का जो साथ मिलना चाहिए, वह हिम्मत से पब्लिक में साथ देने को तैयार नहीं है। उससे मुझे आश्चर्य हुआ।

लेकिन उसकी भी चिन्ता नहीं है; क्योंकि मुझे इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि मेरे साथ कोई है कि नहीं। क्योंकि न तो मुझे किसी की पूजा चाहिए, न कोई सम्प्रदाय बनाना है, न कोई आर्गनाइजेशन बनाना है। मुझे इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। न कोई मेरा स्वार्थ है कि नुकसान होगा या फायदा होगा। वह कुछ भी नहीं है। इसलिए कितने लोग मुझे गाली देते हैं, कितने लोग मुझे स्वीकार करते हैं, इससे फर्क नहीं पड़ता है। एक ही मुझे फर्क-सा मालूम पड़ता है कि विचार की प्रक्रिया अगर पैदा हो। और वह हमेशा शॉक से पैदा होती है, और किसी से पैदा नहीं होती।

हलचल का स्वागत है, उससे विचार जनमेगा

प्रश्नकर्ता : (अस्पष्ट)

भगवान रजनीश : मेरा जो कहना है, उसमें मैं समय का इन्तजार नहीं कर रहा हूं। दो साल में क्या फर्क पड़ने वाला है? बीस साल में इस मुल्क में फर्क नहीं पड़ने वाला है। इस मुल्क में दो हजार साल में फर्क नहीं पड़ता तो दो साल में क्या फर्क पड़ेगा? यानी हमारी चिन्तन की प्रक्रिया इतनी अवरुद्ध हो गयी कि दो हजार साल में भी हम में कोई खास फर्क नहीं पड़ा। यह वैसे ही चलता है। यह सवाल नहीं था। मैं तो केवल प्रतीक्षा कर रहा था इसका कि मुझे सुनने वाला वर्ग तो हो जिससे मैं कह सकूं, कि एक दफा मैं घूम लूं, लोग मुझे सुन लें आखिर। नहीं तो इतना शोरगुल भी नहीं मच सकता था। इतना शोरगुल मचा, वह भी इसीलिए मच सका कि मुझे सुनने वाला एक वर्ग पैदा हुआ है और स्वार्थी तत्व को घबड़ाहट पैदा हुई है कि मुझे सुनने वाला वर्ग मुझे सुनेगा तो खतरा है। सुनने वाला वर्ग ही न हो तो मेरी बात को सुनने की क्या जरूरत है? मैं कह भी दूं तो कौन उसकी फिक्र करता है? जो मैं कह रहा हूं, हिन्दुस्तान में हजारों लोग कहते हैं। आपमें से कई लोग कहते होंगे, पर वह शोरगुल नहीं मचता है। क्योंकि मचने का कारण तब होता है, जब कि मुझसे कोई खतरा पैदा हो। नहीं तो नहीं होगा।

शोरगुल मचता है, वह एक लिहाज से अच्छा लक्षण है। उसको मैं अच्छा लक्षण मानता हूं। मैंने समझा कि वे मुझे खतरनाक मानते हैं। यह अच्छा है। वे इतना मानते हैं कि मेरी लोगों तक पहुंच हो सकती है, लोग मेरी बात सुन सकते हैं। और इससे उनको डर पैदा हुआ। और मेरी बात न पहुंचे, इसकी वे कोशिश में लगे। तो मैं समझता हूं कि यह अच्छा हुआ है, यह शुभ लक्षण है।

अब सवाल यह है कि इसका कैसा उपयोग किया जाए।

मैं देख कर हैरान हुआ, बम्बई के पत्रकार जिन्होंने इन्टरव्यू लिया मुझसे, वे एक-एक कर मुझसे कह कर गये कि आपकी बात हमें बहुत पसन्द है। वे पीछे भी हमसे बोले कि हमें बहुत दुख है कि जो पत्रों में निकला, वह

हम नहीं चाहते थे। आखिर बड़े मजे की बात है, यह बड़े मजे की बात है। फिर तो बड़ी कठिन बात हो गयी। चन्द्रकान्त वोहरा मुझे कह कर गये थे कि यह हमें बहुत दुख है कि हम जो चाहते थे, वह नहीं हुआ, कुछ और ही हुआ। लेकिन यह अच्छा है एक लिहाज से, एक लिहाज से अच्छा है। इसमें मुझे कोई दुख का कारण नहीं दिखायी पड़ता है। मैं तो चाहता ही यह हूं कि वह जो हलचल मची है, वह बन्द न हो जाए। उसको जारी रखिये। कुछ फिक्र नहीं, मेरे विरोध में भी चले तो कोई हर्ज नहीं है, वह जारी रहे। वह जारी रहे तो मैं निबटारा कर लूंगा। आखिर अगर कोई पत्र मेरे सम्बन्ध में गलत लिखकर भी प्रचार करे तो कितनी देर कर सकता है? आखिर मैं जनता से जाकर सीधे भी तो बात कर लूंगा, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

मेरे खिलाफ अभी एक किताब लिखी गई है सूरत में। लेखक को मैंने चिट्ठी लिखी, उन्होंने जवाब भी नहीं दिया। मैंने चिट्ठी लिखी कि बहुत मैं तुम्हें धन्यवाद करता हूं, इसको गांव-गांव पहुंचाओ, ताकि जगह-जगह लोग प्रश्न पूछने लगें तो मैं उत्तर दे सकूं। वे पूछें तो मुझसे। वे जिस सम्बन्ध में पूछना चाहें, मैं उत्तर देने को तैयार हूं। तो वह जो हल-चल चली है, उसको जारी रखना है।

और यह मैं चाहता हूं कि शॉक जोर से लगे। वह तो सिर्फ गुजरात में हुआ, मैं चाहता हूं कि पूरे मुल्क में हो। इससे भी कोई फर्क नहीं पड़ता कि शॉक लगाने में मैं बिल्कुल खत्म हो जाऊं। तो भी हर्ज नहीं है। अगर इतना भी काम हो जाए कि लोग सोचने लगें कुछ मुद्दों पर, तो भी काम पूरा हो जाता है। तो भी काम पूरा हो जाता है। **कुछ लोगों को तो कुर्बानी देनी पड़ेगी, सिर्फ इसलिए कि लोग सोचने लगें।** वह जो मैं चाहता हूं, वे सोचेंगे, वह तो बहुत दूर की बात है; लेकिन वे सोचें तो भी काफी है।

मेरी अपनी समझ यह है कि एक बार आदमी सोचना शुरू कर दे तो गलत चीज के साथ बहुत देर तक राजी नहीं रह सकता है। उसमें कुछ शुरू होगा।

और यह आप खयाल कर लें कि हिन्दुस्तान में शॉक देने की व्यवस्था

ही नहीं है। यहां प्रशंसा की इतनी लम्बी परम्परा है हमारी कि वह शिष्टाचार का ही हिस्सा हो गया है। अगर मुझे कोई कहता है कि मैं गांधी जी के सम्बन्ध में बोलूं, तो यह शिष्टाचार का हिस्सा है कि मैं उनकी प्रशंसा करूं। अगर मेरे सम्बन्ध में आपको बोलने के लिए लाया जाए तो आप शिष्टाचार मानकर मेरी प्रशंसा करेंगे। यह बड़ी झूठ बात हो गयी है। इससे चिन्तन पैदा नहीं होता है। तो मैं तो चाहता हूं कि कुछ लोग शॉक दें, कुछ लोग चीजों को तोड़ें, कुछ जो बहुत दिन से कहा चला जा रहा है,उसके खिलाफ कुछ कहें। यह भी हो सकता है कि शॉक देने में उनको थोड़ी अतिशयोक्ति भी करनी पड़े। यह भी हो सकता है। मैं उसके लिए भी राजी हूं। एक दफा शॉक लगे, चिन्तन शुरू हो, तो अतिशयोक्ति तो मिट जायेगी। उसे कितनी देर लगती है, वह जो डायलॉग पैदा हो जायेगा, उसमें मिट जायेगी। लेकिन यह जो रटी-रटायी परम्परा चल रही प्रशंसा करने की, यह बहुत खतरनाक और महंगी पड़ गयी है। बहुत महंगी पड़ गयी है।

चरित्र-हनन सरल मार्ग है

प्रश्नकर्ता : (अस्पष्ट)

भगवान् रजनीश : मजा यह है, आखिरी उपाय वही रह जाता है। मैं जो कह रहा हूं, अगर उसका कोई उत्तर देने का उपाय न रह जाए, जो मैं कह रहा हूं, उसका खण्डन करने का कोई मार्ग न हो, या सीधा मुझसे बात करने का उपाय न रह जाए, तो फिर एक ही उपाय रह जाता है कि मेरे चरित्र को कुछ कहना शुरू किया जाए। और मेरे चरित्र को बहुत-कुछ कहा जा सकता है। **क्योंकि मैं चरित्र के मामले में बंधा हुआ आदमी नहीं हूं। क्योंकि मैं तो किसी मामले में भी बंधा हुआ आदमी नहीं हूं।**

सर्वोदयी और दिल्ली की दुर्घटना

तो वहां जो घटना हुई, मनू भाई को मैंने वहीं कहा था कि यह घटना हो गयी तो मैं इसका कल सुबह पब्लिक मीटिंग में बात कर लूं। आप भी यहां मौजूद हैं, वह बहन भी यहां मौजूद है, वे सारे लोग भी मौजूद

हैं, जिनके सामने घटना हुई। तो अभी यह बात करना बहुत साफ होगा। पीछे दो महीने, चार महीने बाद आप बात शुरू करेंगे, जो मैं जानता हूं, फिर साफ करना बहुत मुश्किल हो जायेगा। क्योंकि वे सारे लोग नहीं होंगे, मैं नहीं होऊंगा, वह बहन नहीं होगी।

घटना कुछ इतनी हुई कि एक बनारस युनिवर्सिटी की प्रोफेसर – और जैसा उन्होंने लिखा है कि जवान स्त्री थी, लेकिन वह 45 साल की है, 25 साल का तो उसका जवान लड़का है, 45 साल की महिला, और कोई साधारण शिक्षिता नहीं, हिस्ट्री की प्रोफेसर बनारस युनिवर्सिटी में है – मेरे साथ आयी हुई थी। जैसे हिम्मत भाई मेरे साथ आये हुए हैं, तो वह मेरे साथ आयी हुई थी। वह मेरे साथ रुकी। एक दिन कोई बात नहीं हुई। वह मेरे साथ रुकी हुई थी, जहां मैं रुका हुआ था। एक दिन कोई बात नहीं हुई।

दूसरे दिन दोपहर को प्रेस कांफ्रेंस हुई, और उसमें गांधीजी के सम्बन्ध में कुछ प्रश्न पूछे गए, जिनका मैंने उत्तर दिया। वह जो संस्था है, गांधीवादियों की संस्था है। लाला लाजपत राय भवन में मैं रुका था। और वह सर्वेन्ट ऑफ पिपुल सोसाइटी का है, जिसके मनू भाई भी सदस्य हैं। वे सारे लोग वहां थे। वे सारे लोग जिन्होंने आयोजन किया था – क्योंकि मुझे तो कठिनाई पड़ गयी – उनमें से नब्बे प्रतिशत तो गांधीवादी थे। और सारे मुल्क में यही हाल है। क्योंकि आजकल आयोजक भी वे हैं, नेता भी वे हैं, सब कुछ वे हैं। जो भी कहना है, वे ही कहते हैं। आयोजक दिल्ली के सारे गांधीवादी थे, मनू भाई भी आयोजक थे उसमें। वह जो प्रेस कान्फ्रेंस में मैंने सारी बातें कहीं, उनसे उनको बेचैनी हुई। पर उस रात तो कुछ नहीं हुआ।

अब मुझे पता नहीं कि उन्होंने क्या सोचकर निकाला। दूसरे दिन शाम को जब मैं मीटिंग से लौटा तो उन्होंने उस स्त्री का सामान और बिस्तर सब बाहर निकाल दिया था। वह खड़ी दरवाजे पर रो रही थी। आया तो मैं हैरान हुआ। और दस-पच्चीस लोग मेरे साथ आय थे, उन्होंने पूछा कि क्या हुआ? उस स्त्री ने कहा, 'कुछ हुआ नहीं, आपके पैर छूने के लिए मैं रुकी हूं, मैं पैर छू लूं, फिर जाऊं। मैं जा रही

हूं, 'तो मैंने कहा, अभी तेरे जाने की बात नहीं थी, हुआ क्या ? उसने कुछ कहना पसन्द नहीं किया, क्योंकि एक भद्र और शिक्षित महिला है। उसने कहा, मुझे कुछ भी नहीं कहना है और इस बात को खत्म कर देना है। लेकिन वह मुझे अच्छा नहीं मालूम हुआ कि बिना कुछ पता चले वह चली जाए। तो मैंने उससे पूछने की कोशिश की, तो उसने मुझे अन्ततः बताया कि मेरा सामान बाहर निकाल दिया है और मेरे साथ अभद्र व्यवहार किया है, और मुझसे कहा कि आप हमारी संस्था से बिना पूछे उनके साथ कैसे रुकीं ?

तो यह तो पहले दिन, जब वह मेरे साथ आयी थी, तब बात उठानी थी। और अगर कुछ भी कहना था तो मुझसे कहना था। क्योंकि मैं उनका मेहमान था, वह मेरे साथ थी। मगर आयोजकों ने उस महिला को कहा कि आप उनके साथ क्यों रुकी ? और यह अनुचित है उनके साथ यहां रुकना, और इसलिए हम आपको दूसरे कमरे में ले जाते हैं। यहां से आपको ले जायेंगे। उसका जबरदस्ती सामान निकाला तो वह हैरान हो गई। और उस भद्र महिला को वह व्यवहार अजीब सा मालूम पड़ा। मैंने कहा भी आकर कि यह तो मुझे कहना था। और यह भी डेढ़ दिन बाद आप कह रहे हैं, जैसा कि दो महीने बाद उन्होंने वक्तव्य दिया। डेढ़ दिन बाद उन्होंने वह काम किया। फिर भी मैंने कहा, कोई हर्ज नहीं है।

तो मैंने उसको समझाने की कोशिश की कि अभी फिलहाल मान जाए। लेकिन वह महिल भी जिद्द पकड़ गयी कि मेरा अपमान हुआ है, अब मैं रुकूंगी तो यहीं रुकूंगी, मैं दूसरे मकान में जाने को राजी नहीं हूं, क्योंकि मैंने न कोई पाप किया है, और न कोई बुराई की है। क्षमा इन्हें मांगनी चाहिए कि मेरा सामान इन्होंने बाहर निकाला। वह यह जिद्द पकड़ गयी। और वे सारे लोग यह जिद्द पकड़ गये कि इसको इस कमरे में रहने नहीं देंगे। मेरी समझ के बाहर हो गया। मैंने कहा कि इसमें कुछ भी निबटारा होना चाहिए। और मैंने उनसे कहा कि इसमें मनू भाई, भूल मैं आपकी समझता हूं। क्योंकि यह बात मुझसे कहनी थी पहली बात, डेढ़ दिन पहले कहनी थी। और अभी भी

कहनी थी तो मुझसे कहनी थी आकर, तो इसका कोई भी रास्ता हो सकता था। उससे सीधे आपको बात नहीं करनी थी। बड़ी अशोभन बात हुई है। और इसलिए मैं उसके पक्ष में हूं, मैं उसके पक्ष में हूं कि वह ठीक कह रही है। उसे जिद्द करनी चाहिए। और मैंने कहा कि उसको आज रात रुकने दें, कल सुबह मैं उससे कहूंगा कि तू दूसरे कमरे में चली जा। वह मेरी समझ की बात होगी, लेकिन अभी यह गड़बड़ मत करें। पर वे सारे लोग जिद्द पकड़ बैठे पूरा का पूरा, जैसे कि एक कांसपिरेसी हो, षड़यंत्र हो कि नहीं, इसको हम यहां रहने नहीं देंगे।

तो फिर मैंने कहा, अब तो एक ही रास्ता है कि मैं भी आपकी संस्था छोड़कर चला जाऊं, और मैं प्रोटेस्ट मे आपकी संस्था छोड़कर जाता हूं। क्योंकि यह अभद्र व्यवहार आपने किया है। रह गयी मेरी बात, मैंने उनसे कहा, मुझे कोई कठिनाई नहीं है कि मेरे कमरे में कौन आकर रुकता है। मैंने कहा, आप भी आकर रुक जाएं अगर बहुत तकलीफ हो कि यह महिला यहां सो रही है। रात में आपको उसकी बहुत चिन्ता हो तो आप भी इसी कमरे में आकर रुक जाएं, यह मेरी समझ में आता है। और दो जन भी आकर इस कमरे में रुक जाएं, ताकि आपको चिन्ता न रहे, परेशानी न रहे।

फिर मैंने कहा, दूसरे दिन कल सुबह मैं पब्लिक मीटिंग में उसकी बात कर लूंगा, ताकि यह बात जाहिर हो जाए,क्योंकि यह बात तो चलेगी; क्योंकि चलाने के लिए आयोजन किया गया है, ऐसा हमें मालूम पड़ता है। तो उन्होंने इससे मुझे रोका कि नहीं, इसकी बात मत करिये, इससे संस्था का अपमान होगा। माफ करिये, जो हो गया हो गया।

दूसरे दिन जो सब्जेक्ट था, वह था 'सेक्स एण्ड लाइफ' या 'कामवासना और जीवन'। उस सब्जेक्ट को उन्होंने बदल दिया। कहा कि इस सब्जेक्ट को बदल दें। उनको डर हुआ कि कहीं मैं इसके सिलसिले में वह बात न करूं। उन्होंने कहा, उसको भी बदल दीजिये, धर्म पर ही बोलिये। यह सारा हुआ। तीसरे दिन सांझ को चलते वक्त ये सारे लोग मुझसे क्षमा मांगने आये और बोले कि माफ करिये, वह जो हो गया हो गया,

गलती हो गयी । मैंने कहा, उसकी मुझे चिन्ता नहीं, जो हो गया है । अब पीछे इसकी क्या चर्चा चलाइयेगा, वह थोड़ा सोचने का है । क्योंकि चर्चा तो यह चलेगी, यह रुकने वाली नहीं है । और मुझे चलाने नहीं दिया । मैं चला देता तो अच्छा होता ।

अहमदाबाद का प्रेस-कान्फ्रेस

दो महीने वे चुप रहे । अब प्रेस कांफ्रेंस बुलाकर वह सारी बात कही है । और पीछे जो हिस्सा उन्होंने जोड़ दिया, वह मैं नहीं सोचता था कि मनू भाई वगैरह को पीछे से करना चाहिए था ।

मुझ से तीसरे दिन सांझ को बैठक में यह बात हुई कि अगर कोई स्त्री आपका आलिंगन करे तो क्या आपको एतराज न होगा ? मैंने कहा, मुझे कोई स्त्री, भूत, प्रेत, कोई भी आकर आलिंगन करे तो मुझे कोई एतराज न होगा । मैं किसी का आलिंगन करने नहीं जाता हूं । मेरा कोई आलिंगन करे तो मुझे कोई एतराज नहीं है । तो फिर उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या मानते हैं कि आलिंगन सेक्सुअल नहीं है ? मैंने कहा, आलिंगन सेक्सुअल हो भी सकता है, नहीं भी हो सकता है; यह करने वालों पर निर्भर है । एक मां अपने बेटे का आलिंगन कर सकती है, एक बहन अपने भाई का कर सकती है, एक पत्नी अपने पति का कर सकती है । यह इस पर निर्भर है कि करने वाले क्या कर रहे हैं । वह सेक्सुअल भी हो सकता है, और स्प्रीचुअल भी हो सकता है । यह कोई जरूरी नहीं है कि वह कैसा है, यह करने वालों पर निर्भर है ।

और मैंने कहा कि तीसरा आदमी कभी तय नहीं कर सकता कि दो करने वालों का आलिंगन कामुक था, कि नहीं था । और मैंने कहा, तीसरा आदमी अगर तय करने जाता है तो वह तो सेक्सुअल है, यह पक्का है । उसको तो कम से कम नहीं तय करने जाना चाहिए । अगर मनू भाई से कोई आलिंगन कर रहा है तो मैं कैसे तय करूं कि वह आलिंगन सेक्सुअल है कि नहीं । और मैं करूं भी क्यों ? और अगर मैं करता हूं तो मैं सेक्सुअल हूं, इतना तो पक्का हो जाता है । और उनका आलिंगन कामुक हो या न हो, यह मुझे कुछ पता नहीं ।

तो उन्होंने वह सारा का सारा उसमें जोड़ दिया कि मैं आलिंगन को, चुम्बन को, कामुक नहीं मानता हूं । बच्चों जैसी बात है, कोई बहुत समझदारी की बात नहीं है । वह समझदारी की बात नहीं मालूम पड़ी मुझे । और फिर मेरे जैसे आदमी के लिए जो कि पब्लिक में सारी बातें करने को हमेशा राजी है, उसके लिए फिर दो महीने छिपा कर अहमदाबाद में, जहां मैं मौजूद नहीं हूं, वहां वक्तव्य देना क्या बतलाता है ? लेकिन चलेगा, यह सब चलेगा ।

प्रश्नकर्ता : आपने रिफ्यूज नहीं किया ?

भगवान् रजनीश : रिफ्यूज क्या, इनकार क्या, बात तो ठीक ही है । जो मैंने कहा न, रिफ्यूज क्या करता हूं ? रिफ्यूज का क्या मतलब है ? घटना तो बिल्कुल ठीक है कि वह महिला मेरे साथ रुकी थी । इसमें कोई झूठ बात नहीं है । मैंने कहा, उसको रुकना चाहिए, यह भी झूठ बात नहीं है । उसके प्रोस्टेस्ट में मैं महिला को लेकर दूसरे घर में चला गया, वह भी बात सच है । इसमें कुछ बात झूठ नहीं है । इन्टरप्रेटेशन को रिफ्यूज करता हूं । बात झूठ नहीं है, बात तो बिल्कुल ही सही है, लेकिन व्याख्या उसकी गलत है । जैसे कि नारगोल के चित्र को छाप दिया था । वह तो हजार लोगों के सामने वह महिला मेरे गले से मिल गयी थी । उसका फोटो निकाल लिया, फिर उस फोटो को छाप दिया । सैकड़ों लोगों का मन हो सकता है गले मिलने का । और मैं नहीं मानता कि गले मिलने में कोई पाप हो गया ।

लेकिन हमारा जो दिमाग है, सोचने का जो ढंग है, वह तो ठीक नहीं है । वे जिस ढंग से सोचते हैं हमको, उससे खयाल में आ गयी बात कि यह बहुत पाप हो गया, बहुत गलत हो गया । और मैं तो, चूंकि सेक्स से संबंध नहीं है, मेरी दृष्टि बहुत और तरह की है । और संप्रसिव माइंड जो है, मैं उसके बहुत विरोध में हूं । मैं इस पक्ष में भी नहीं हूं कि पुरुष और स्त्री के बीच इतना फासला हो, जितना फासला हमने बनाकर रखा है । क्योंकि मेरा मानना है, यह फासला आदमी को कामुक बनाने का कारण बनता है । स्त्री और पुरुष जितने नजदीक होंगे, जितने निकट होंगे, **स्त्री और पुरुष के बीच जितना फासला कम हो, और स्त्री और**

पुरुष स्त्री पुरुष होने के लिए जितने कम कंशस रह जाएं, **उतना अच्छा होगा।** बच्चे और बच्चियां इस तरह पाली जाएं कि उन्हें पता ही न चले कि वे लड़के हैं या लड़कियां हैं; वे इतना निकट खेलें और कूदें, साथ तैरें और दौड़ें कि उनके बीच में एक दीवार खड़ी न हो जाए। उतना ही अच्छा और कम सेक्सुअल समाज हम निर्मित कर सकेंगे। जितना फासला होगा, जितनी दीवार होगी, जितनी हम दूरी को बनाये रखने की कोशिश करेंगे, उतना सेक्सुअलिटी समाज में पैदा होगी।

भारत पश्चिम से ज्यादा कामुक है

तो यह जो हमारा समाज है, मेरी दृष्टि में, पश्चिम से भी ज्यादा सेक्सुअल समाज है। हालांकि पश्चिम में हमें दिखायी पड़ता है कि लोग साथ नाच रहे हैं और नंगे घूम रहे हैं और तालाबों में तैर रहे है, लेकिन उनसे ज्यादा कामुक हमारी दृष्टि है। हम ऊपर से तो दूर-दूर दिखायी पड़ते हैं और चित्त भीतर से निरन्तर यही सोचता है।

और यही मैंने मनू भाई और वहां उन मित्रों को कहा था कि मैं वहां सोया हूं उस कमरे में, चिन्ता मुझे होनी चाहिए, या चिन्ता उस महिला को होनी चाहिए। लेकिन मनू भाई अपने कमरे में सो रहे हैं और रात भर नहीं सो पायें और चिन्तित हों तो बड़ी आश्चर्य की बात है। इस-लिए तुम यहीं आ जाओ, यहीं सो जाओ, यह भी समझ में आता है। लेकिन तुम अपने कमरे में क्यों परेशान हो? और दो महीने तक परे-शान रहो, और दो महीने तक तुम्हें नींद न आये और चलता रहे दिमाग में, तो यह सेक्सुअल माइंड का लक्षण है। यह कोई अच्छे चित्त का लक्षण नहीं है।

प्रश्नकर्ता : क्या पश्चिम का समाज अपने समाज से अच्छा है?

भगवान् रजनीश : इतना एकदम नहीं कहता हूं, क्योंकि पूरे समाज की बाबत नहीं कह रहा हूं। यानी जितना हां और ना में उत्तर दे सकता हूं कि उनसे अच्छा है या बुरा है, कुछ मामलों में हमसे अच्छा है, कुछ मामलों में हमसे बहुत बुरा है।

प्रश्नकर्ता : (अस्पष्ट)

भगवान् रजनीश : हां, हमसे अच्छा है। लेकिन जैसा होना चाहिए, वैसा नहीं है। तो मैं कह रहा हूं, हमसे अच्छा है, लेकिन जैसा होना चाहिए, वैसा नहीं है। क्योंकि हमसे अच्छा जो वह है वह सिर्फ इसी कारण है कि सप्रेशन उठ गया है। लेकिन सप्रेशन इतना पुराना था और इतनी तेजी से उठ गया है कि दूसरी अति पर डोलने की स्थिति पैदा हो गयी है। ऐसे ही जैसे एक आदमी बीस दिन उपवास कर ले और फिर एकदम से उसको भोजनालय में छोड़ दिया जाए तो वह एकदम से पागल की तरह खाने लगे और बीमार पड़ जाए। फिर भी मैं कहूंगा कि भूखे मरने के बजाय ज्यादा खाकर मर जाना अच्छा है। फिर भी मैं यह कहूंगा, भूखे मर जाने के बजाय ज्यादा खाकर मर जाना अच्छा है। यह मैं कहूंगा, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि मैं ज्यादा खाने वाले की तारीफ कर रहा हूं। मैं यह कह रहा हूं कि खाना सम्यक होना चाहिए, लेकिन अगर बहुत दिन तक समाज को भूखा रखा जाए तो लोग ज्यादा खाकर मरने की हालत में हो जाते हैं।

हिन्दुस्तान का समाज उतना सप्रेसिव, दमनशील नहीं था, जितना सप्रेसिव ईसाइयत रही पश्चिम में। उस सप्रेशन की, दमन की वजह से, जब सप्रेशन टूटा तो लोग पागल की तरह सेक्स की तरफ दौड पड़े। लेकिन वह सम्यक हो जायेगा। कितनी देर तक दौड़ेंगे? आने वाले बीस-पच्चीस वर्षों में पश्चिम की यह हालत कम हो जायेगी। लेकिन हमारी हालत कम कभी नहीं होगी। हमारा दमन, हमारा रिप्रेशन जारी है, जारी है। हम सिखाये चले जा रहे हैं वही। हमारा बूढ़ा आदमी भी सेक्स से मुक्त नहीं हो पाता है। वह अस्सी साल का हो जाए तो भी मुक्त नहीं हो पाता है। उसका माइण्ड वही काम करता है। वह जिन्दगी भर का दबाया हुआ हिस्सा पीछे पड़ता है।

तो मेरी दृष्टि यह है कि **चित्त की जो सहजता और सरलता है, उसकी स्वीकृति होनी चाहिए।** उसको ऊंचाई की तरफ रूपान्तर करने की चेष्टा होनी चाहिए। लेकिन दमन के मैं पक्ष में नहीं हूं। और उसी को लेकर आपके गुजरात में काफी चला है कि मैंने कहा, बच्चे और बच्चियों को बहुत देर तक नंगे रहने दिया जाए, जहां तक हमसे बन

सके, उनपर वस्त्र पहनने का आग्रह नहीं लगाना चाहिए। मेरा कहना यह है कि जब छोटे बच्चे, सात-आठ साल के बच्चे, घर में हों तब तक तो हमें बिलकुल आग्रह नहीं लगाना चाहिए। वे नंगे घर में घूम सकें, खेल सकें। तेरह-चौदह साल के भी बच्चे हो जाएं और घर के बाथरूम में नंगे नहाना चाहें तो उनको नहाने देना चाहिए। अगर तेरह-चौदह साल तक के बच्चे, लड़के और लड़कियां, एक दूसरे के शरीर से परिचित हों तो शरीर के प्रति जो जुगुप्सा पैदा होती है, बाद में वह विलीन हो जायेगी। नहीं तो आज बहुत जुगुप्सा है, बहुत तीव्र इच्छा है एक दूसरे को देखने की। बूढ़े से बूढ़ा आदमी भी स्त्री को देखेगा तो उसकी आंखें उसके कपड़े में घुस जायेंगी। वह खोज उसकी बचपन से अटकी रह गयी है, वह इन्क्वायरी, वह पकड़ी है उसके दिमाग में और उसको खाये जा रही है।

आदिवासी के पास जाकर देखें तो उसको कोई फिक्र नहीं है।

मेरे एक मित्र कोई तीस वर्ष तक आदिवासियों के बीच रहे। उन्होंने कहा, जब शुरू-शुरू में मैं गया, तो अद्भुत बात देखने को मिली। आप आदिवासी स्त्री के स्तन पर हाथ रखकर पूछो कि यह क्या है, तो वह कहेगी कि यह बच्चे को दूध पिलाने के लिए है। बस इतना कहेगी। एक इन्क्वायरी की बात है। हम पूछेंगे, यह क्या है तो वह कहेगी, इससे बच्चे को दूध पिलाते हैं, यह स्तन है। अब यह स्वच्छता, लेकिन, हमारे मन में कैसे हो सकती है? यह हमारी कल्पना के बाहर है। मगर होना यही चाहिए। शरीर का कोई भी भाग किसी-न-किसी काम का है।

फिर एक तरफ हम दमन करते हैं और दूसरी तरफ हम नंगी तस्वीरें बनाते हैं, नंगी फिल्में बनाते हैं, नंगे पोस्टर बनाते हैं, नंगी किताबें छापते हैं। फिर उनसे हम तृप्ति लेते हैं देख-देखकर। अब मेरा कहना यह है कि अगर नंगा ही देखने की इच्छा है तो नंगा आदमी ही देख लो; वह अच्छा है, स्वस्थ है बजाय नंगी तस्वीर के। क्योंकि यह मेरी समझ है कि नंगा आदमी देखकर आप नंगा देखने की इच्छा से मुक्त हो जायेंगे, नंगी तस्वीर देखकर आप कभी मुक्त नहीं हो सकते। क्योंकि तस्वीर बहुत तरकीब से नंगी बनायी गयी है। उससे आप मुक्त कभी नहीं हो सकते।

वह आपको और पकड़ेगी, और खींचती चली जायेगी।

प्रसंग से तोड़ कर गलत प्रचार

तो उसका भी शोरगुल मचाया कि मैं यह कहता हूं कि तेरह-चौदह साल के बच्चों को नंगा घुमाया जाना चाहिए। यह मैंने कभी नहीं कहा कि नंगा घुमाया जाना चाहिए। मेरा कहना यह है कि वस्त्रों पर रोक-टोक कम होनी चाहिए और कम से कम घर में भाई-बहिन तो नंगे बाथरूम में नहा सकें, इकट्ठे घर के कुएं पर नहा सकें। घर में तो इतनी बाधा न हो कि घर में बहन या भाई कपड़ा बदलें तो बहुत डरें और दीवार के पीछे जाएं। अगर बच्चे देख लें मां-बाप को नंगा, बच्चे एक दूसरे को नंगा देख लें तो नंगा देखने की जो तीव्र आकांक्षा है, वह क्षीण हो जाएगी। और वह क्षीण हो जाए तो नंगा पोस्टर विलीन हो जायेगा अपने आप, नंगी फिल्म विलीन हो जायेगी।

अब एक तरफ हमारे साधु-संत कहते हैं कि नंगा पोस्टर नहीं होना चाहिए, एक तरफ कहते हैं कि नंगी फिल्म नहीं बननी चाहिए, नंगी किताबें नहीं लिखी जानी चाहिए, और दूसरी तरफ आदमी को ढांकते चले जाते हैं। अब इन दोनों बातों में विरोध है। वह इसी नंगे आदमी को देखने की इच्छा वहां पूरी की जा रही है। उनको बिगाड़कर तो रखा ही जा सकता है।

अभी कल मुझे बम्बई में एक कार्टून में दिखलाया है, वह किसी गुजराती अखबार में निकला है। गांधी जी का एक चित्र है और एक बूढ़ी चर्खा कात रही है; नीचे दर्शनी लिखा हुआ है। और मेरा एक चित्र है और दो नंगे लड़के और लड़कियां खड़े हुए हैं; नीचे दार्शनिक लिखा हुआ। दिखाया यह गया है कि मैं चाहता हूं कि आदमी नंगे खड़े हो जाएं। और मजा यह है कि मैं यह चाहता हूं कि **आदमी का नंगापन मिट जाए।**

और नंगापन पैदा किया है हमारे छिपाने ने। जितना हमने छिपाया, आदमी उतना नंगा हो गया। और कपड़े, यदि सोचते हैं, छिपाने के लिए हैं तो आप बिलकुल गलती में हैं। कपड़े हजारों साल से उघाड़ने के काम में आ रहे हैं। एक नंगी औरत इतनी खूबसूरत कभी नहीं होती, जितनी

कपड़ों में बांधकर, खड़ी होकर दिखायी पड़ती है । नंगी औरत से आप घबड़ा जायेंगे, थोड़ी देर में कहेंगे, देवी, कपड़ा पहन लो । लेकिन वह जो कपड़े में छिपी औरत है, वह आपकी जिज्ञासा को जगाती चली जाती है, जगाती चली जाती है । औरत का पचास परसेंट सौंदर्य तो कपड़े देते हैं । और जितनी समझ बढ़ती जा रही है कपड़े की बाबत, उतनी औरत सुन्दर होती चली जा रही है । औरत सुन्दर-उन्दर नहीं है, शरीर में क्या सुन्दर जैसा होने वाला बहुत–कुछ है ? कपड़े उघाड़ रहे हैं शरीर को, छिपा नहीं रहे हैं । और कपड़े उघाड़-उघाड़ कर शरीर को ही बता रहे हैं ।

और सारी कपड़ों की टेकनीक अब जो रह गयी है, वह यह है कि कपड़ा शरीर को कितना नंगा कर दे । इसकी तरकीब है पूरे कपड़े के साथ । नंगा शरीर इतना नंगा कभी भी नही होता, जितना कपड़ों में तरकीब से दिखाया गया शरीर नंगा होता है । क्योंकि आदमी की क्यूरिआसिटी, उसका कुतूहल जगाने के लिए कुछ रास्ते हैं। कुछ दिखाओ, कुछ छिपा लो तो आदमी की क्यूरसिटी बढ़ जाती है । पूरा दिखा दो तो क्यूरसिटी खत्म हो जाती है । तो शरीर की अब जो तरकीब चल रही है सारी दुनिया में, उसमें यह है कि कुछ छिपाओ, कुछ दिखाओ । वह जो कुछ दिखाओ, उससे जो छिपा है, उसको देखने की प्रवृत्ति और बढ़ती है ।

प्रश्नकर्ता : (अस्पष्ट)

भगवान् रजनीश : हां, वह सब निकलेगा, वह निकलेगा ही । क्योंकि हम शरीर को देखना भी चाहते हैं नंगा और दिखाना भी चाहते हैं । दोनों बातें खयाल रख लें । वे हमारे स्वभाव के हिस्से हैं । हम देखना भी चाहते हैं और दिखाना भी चाहते हैं । और जब इन दोनों स्वाभाविक इच्छाओं को दबाये हुए हैं, तो फिर हम तरकीब निकालेंगे । अब झूठे स्तन बाजार में बिकते हैं, जिनको स्त्री लगा ले और दिखायी पड़े । आप हैरान होंगे कि यूनान में झूठी पुरुष की जननेंद्रियां भी बिकती हैं जो वह फुलपेंट के ऊपर लगा ले और फुलपेंट पर से दिखायी पड़े कि उसकी जो जननेंद्रिय है, वह बहुत बड़ी है ।

अब इसको मैं नंगापन कहता हूं । यह हद्द पागलपन हो गया है । यानी यह तो पागलपन की बात हो गयी । ये जो कपड़े चुस्त होते जा रहे हैं, ये शरीर को दिखाने के लिये हैं, कि शरीर दिखना चाहिए भीतर से कि शरीर कैसा है । और कपड़े चुस्त से चुस्त होते चले जा रहे हैं । और उन चुस्त कपड़ों में नंगे शरीर को दिखाने की आकांक्षा तीव्र होती चली जा रही है । देखने की भी इच्छा है, दिखाने की भी आकांक्षा है । और हम इस सबको जाल में छिपाते हैं और सीधी-साफ बात करना नहीं चाहते हैं ।

वही कहूंगा जो ठीक लगता है

तो कठिनाई तो है, जो मैं कह रहा हूं उसमें कठिनाई तो है । उसको बिगाड़कर भी रखा जा सकता है, उसके खिलाफ भी हलचल मचाई जा सकती है । **लेकिन वही मैं कहूंगा कि जो मुझे ठीक लगता है** । वह कहना चाहिए । और कुछ लोगों को हिम्मत करनी चाहिए कि वे कहें । **तो शायद समाज धीरे-धीरे सोचने-विचारने को राजी हो, कुछ तो समझ बढ़े ।**

प्रश्नकर्ता : (अस्पष्ट)

भगवान् रजनीश : वे तो करेंगे । जब तक वाद चलेगा, तब तक वाद अग्रेसिव होगा, आक्रमक होगा । क्योंकि वाद के लिए संस्था चाहिए, अनुयायी चाहिए । और बाजार है अनुयायियों का । और आप दस अनुयायी हैं और तीन सस्था वाले हैं तो तीनों कोशिश करेंगे कि आप उनको मिल जाएं । और ग्राहक के लिए चेष्टा में आक्रमण होगा । दुनिया में जब तक वाद हैं, तब तक आक्रमण जारी रहेगा । अगर वाद ही मिट जाएं तो आक्रमण मिट सकता है । अगर वाद ही मिट जाएं तो आक्रमण मिट सकता है । और वाद मिट सकते हैं ।

अगर हम एक-एक व्यक्ति को वह समझाने की कोशिश करें कि तुम वाद में मत पड़ना तो वाद मिट सकते हैं । हिन्दू बढ़ेगा तो मुसल-मान पर आक्रमण जारी रहेगा । मुसलमान बढ़ेगा तो हिन्दू पर आक्रमण जारी रहेगा । क्योंकि दोनों दूकानदार एक ही बाजार में हैं और ग्राहक सीमित हैं । और उन्हीं को लाना है, ले जाना है । वह जारी रहेगा । अच्छी दुनिया पैदा करनी हो, तो वाद, धर्म, संप्रदाय, सब जाने चाहिए ।

और कुछ कठिनाई नहीं है। और बीस साल के लिए मुल्क तय कर ले, और स्कूल और कॉलेज में बच्चों के दिमाग से हिन्दू, मुसलमान, ईसाई और जैन होने का भाव मिटा दे, तो बीस साल में खत्म हो जाए दो हजार साल का पागलपन। इसमें कोई ज्यादा दिक्कत की बात नहीं है। लेकिन वह नहीं होता। वह तो स्कूल-कॉलेज में भी धर्म-शिक्षा देने की चेष्टा चलती है। वहां भी कोशिश चलती है कि उनको पकड़े रहो अपने जाल में, वे निकल न जाएं। वे तो अग्रेसिव हैं।

चर्खा मजबूरी हो, सिद्धान्त नहीं

प्रश्नकर्ता : (अस्पष्ट)

भगवान् रजनीश : नहीं, मैं उसका विकल्प नहीं कहता हूं, और न मैं उसके खिलाफ हूं। मेरा कहना है कि अगर ग्रामोद्योग और चर्खा चले तो वह हमारी मजबूरी हो, सिद्धान्त नहीं। वह मजबूरी है हमारी। यानी अगर गांव में कोई दवा उपलब्ध नहीं है और आप होमियोपैथी की गोली खाते हैं तो मैं कहता हूं, यह मजबूरी है आपकी। लेकिन वह एलोपैथी का सब्स्टीट्यूट नहीं है। मेरा मतलब समझे न? कोशिश तो हमारी एलोपैथी पैदा करने की होनी चाहिए। नहीं मिलती है तो हम राख भी खा लेते हैं किसी गुरु की। ठीक है, नहीं मिलने की हालत में ठीक है। भारत की मजबूरी हो चर्खा अगर, तो मैं समझता हूं ठीक है। लेकिन सिद्धान्त नहीं है बह कि हमें उसके आधार पर इकोनॉमी या अर्थ व्यवस्था खड़ी करनी है। यह हमें जानना चाहिए कि इकीनॉमी तो हमें इण्डस्ट्री के आधार पर खड़ी करनी है। और आज नहीं कल चर्खा चला जाए, इसकी कोशिश करनी है। चर्खा रह न जाए। यानी हमारी चेष्टा तो यह रहेगी कि चर्खा विलीन होता चला जाए। चेष्टा हमारी यह रहेगी कि ग्रामोद्योग न रहे। उद्योग इतना केन्द्रित हो, इतना विकसित हो, इतना ऑटोमेटिक हो, इतना टेक्नोलॉजिकल हो कि छोटे-छोटे उद्योग न रह जाएं। चेष्टा हमारी यह होनी चाहिए। मेरा मतलब आप समझे न?

लेकिन मेरी बात को गलत समझा जाता है। मैं यह नहीं कहता कि

आप चर्खे को आग लगा दें अभी। चर्खे कुछ काम कर रहे हैं, उनको करने दें। लेकिन चर्खा मजबूरी है, जैसे बैलगाड़ी मजबूरी है। चेष्टा तो हमारी यह होगी कि बैलगाड़ी नहीं बचने देंगे मुल्क में। हमारा लक्ष्य तो यह होना चाहिए कि बैलगाड़ी नहीं बचने देंगे। इसका मतलब यह नहीं है कि आज बैलगाड़ी जो भी कर रही है, उसको न करने दें और उसमें हम आग लगा दें। लेकिन ध्यान रहे कि हमको बैलगाड़ी हटा देनी है। उसकी जगह नये वाहन ले आने हैं।

लेकिन विनोबा और गांधी का मामला मजबूरी का नहीं है। विनोबा और गांधी के लिए तो बड़ी इण्डस्ट्री ही मजबूरी है। वह मिट जाए, इसकी चेष्टा वे करेंगे। आप मेरा फर्क समझे न? विनोबा और गांधी के लिए जो बड़ी इण्डस्ट्री है, वह मजबूरी है। छोटी इण्डस्ट्री ही होनी चाहिए।

केंद्रीकरण के पक्ष में हूँ मैं

और धीरे-धीरे बड़ी इण्डस्ट्री विकृत हो जाए, टूट जाए, बिखर जाए, विकेन्द्रित हो जाए और छोटी इण्डस्ट्री आ जाए, इसे मैं अवैज्ञानिक मानता हूं। पांच सौ परिवारों के लिए पांच चौके काफी हो सकते हैं। और पांच चौके कम खर्च के होंगे, ज्यादा सुविधा के होंगे। ज्यादा वैज्ञानिक हुआ जा सकता है। एक डायटीसियन रखा जा सकता है जो सारी जानकारी रखता हो खाना की बाबत। कम श्रम लगेगा, कम औरते उलझेंगी। और औरतों को दूसरे काम में लगाया जा सकता है। सारी चीजें जितनी केंद्रित होती हैं, उतना कम श्रम लेती हैं, उतनी ज्यादा सुविधा लाती हैं, ज्यादा वैज्ञानिक हो जाती हैं। अब हिंदुस्तान भर में कारें बनें, यह बिल्कुल फिजूल बात है। एक नगर को कार बनानी चाहिए; पूरे मुल्क के लिए कार का काम पूरा होगा। उस गांव का शिल्प भी विकसित होगा। जब वहां कार बनेगी; दस-पांच पीढ़ियों तक तो वहां के लोग पैदाइश से कार बनाने के शिल्प को लेकर पैदा होंगे। उनमें दृष्टि होगी, खोज होगी, कुशलता होगी। सारे मुल्क में पचास कारखाने खड़े करने की जरूरत नहीं है।

जगत का जो विकास है, वह केन्द्रीकरण की तरफ है। और जितनी

केन्द्रित व्यवस्था होती है, वह उतनी धन उत्पन्न करने वाली व्यवस्था होती है। हिन्दुस्तान हमेशा से विकेन्द्रित है, इसलिए दरिद्र है। और अगर आगे भी विकेन्द्रित रहेगा तो दरिद्र ही रहेगा। क्योंकि धन पैदा होता है केन्द्रित टेक्नालॉजी से।

चर्खे से धन पैदा नहीं होता है, सिर्फ किसी तरह कपड़ा पैदा होता है। किसी तरह से तन ढंग सकते हैं। आप लेकिन चर्खा धन पैदा नहीं कर सकता है, यह ध्यान रहे। और तन भी बहुत महंगा ढंकता है। क्योंकि अगर एक आदमी अपने लायक कपड़ा पैदा करना चाहे तो कम से कम चार घंटे रोज उसको चर्खा चलाना है, तब वह अपने लायक कोट, कमीज, पायजामा, चादर, साल भर के लिए पैदा कर पायेगा। चार घंटे आदमी की जिंदगी के सिर्फ कपड़े पहनने के लिए खर्च हो जाएं, यह बहुत महंगा हो गया। यह आदमी की जिन्दगी के साथ खिलवाड़ हो गया।

संकोच नहीं, फैलाव चाहिए

प्रश्नकर्ता : (अस्पष्ट)

भगवान् रजनीश : पूरे कपड़े का मतलब जरा दूसरा हो जायेगा। फिर गांधी जैसा कपड़ा पहनना पड़ेगा। मेरा मतलब समझे आप? फिर पूरे कपड़े का मतलब होगा गांधी जैसा कपड़ा पहनना। तब आधा घन्टा भी चर्खा चलाना न पड़े। आदमी बिल्कुल कपड़ा न लगाये, महावीर जैसा कपड़ा पहने। फिर तो नंगा खड़ा हो सकता है। यह तो हमारे सिकोड़ने का सवाल है।

अगर आदमी को सिकोड़ना है तो मैं सिकोड़ने के पक्ष में नहीं हूं। मेरा कहना है, आदमी का स्वभाव विस्तार का है **और आदमी प्रफुलित होता है विस्तार से**। सिकोड़ने से कभी प्रफुल्लता नहीं होती। इसलिए साधु-संन्यासी आपको कभी प्रफुल्लित नहीं मालूम पड़ेंगे। हमेशा उदास और रोते हुए मालूम पड़ेंगे। जितना चित्त को आप सिकोड़ेंगे, उतना आप उदास होते चले जायेंगे। मैं इसलिए गांधी जी से सहमत नहीं हूं, रवीन्द्रनाथ से सहमत हूं। मैं रवीन्द्रनाथ से सहमत हूं। रवीन्द्रनाथ का कहना है कि कपड़ा इतना पहनें जिससे ज्यादा पहना न जाए। वे कोट ऐसा

पहनेंगे जो जमीन छूना चाहे। और मुझे लगता है कि यह बात ठीक है।

आदमी को विस्तार का मौका देना चाहिए। बड़ा मकान होना चाहिए। छोटा मकान आदमी के दिमाग को भी छोटा करता है। कपड़े भी ढीले और बड़े होने चाहिए। बंधे हुए और छोटे कपड़े आदमी को सिकोड़ते हैं। एफ्लुएंस होना चाहिए आदमी के चारों तरफ, प्रचुर समृद्धि होनी चाहिए, उसे लगे कि सब है। लेकिन भारत की अब तक की दृष्टि जो है, वह है अपरिग्रह की –– कमसे कम, कम से कम। कम से कम को दृष्टि मुल्क को दरिद्र बनाती है। मैं इसके पक्ष में नहीं हूं। मेरा कहना है कि ज्यादा से ज्यादा की दृष्टि मुल्क को समृद्ध बनाती है। **क्योंकि जो दृष्टि होगी, वही हम करेंगे**। अगर ज्यादा लाना है मुल्क में तो हम ज्यादा की चेष्टा करेंगे। अगर लाना ही नहीं है तो चेष्टा किसलिए करेंगे?

तो मैं गांधी जी और विनोबा जी की बात के विरोध में हूं। मैं सिकोड़ने के पक्ष में नहीं हूं। मेरा कहना है, **मुल्क फैलना चाहिए**। यह मैं जानता हूं कि मुल्क गरीब हैं। और हमारे कहने से नहीं फैल जायेगा, यह भी मैं जानता हूं। यह भी मैं जानता हूं कि मजबूरी में हमें चर्खे आदि साधनों का उपयोग करना पड़ेगा दस-बीस वर्ष। लेकिन ध्यान रहे, वह हमारी मजबूरी है और उनको मिटा देना है। उनको बचने नहीं देना है। यानी एक मुल्क हमें पैदा करना है जिसमें चर्खे की जरूरत नहीं होगी, जिसमें बैलगाड़ी की जरूरत नहीं होगी। यह मेरी दृष्टि है, जो मैं कह रहा हूं।

सिद्धान्ततः मैं पक्ष में नहीं हूं चर्खे के। मजबूरी की तरह स्वीकार करता हूं, नहीं तो स्वीकार नहीं करता। और यही फर्क है विनोबा और मेरी दृष्टि में। विनोबा के लिए तो सिद्धान्त है। और ऐसा होना चाहिए सारी दुनिया में, यह खयाल है। और यह भी खयाल है कि ऐसा होगा तो दुनिया में शान्ति होगी। यह मेरा खयाल नहीं है।

यह आदमी पर निर्भर है

प्रश्नकर्ता : (अस्पष्ट)

भगवान् रजनीश : कोई यंत्र न तो मारक होता है, न

तारक होता है। आदमी के हाथ में यह तय होता है कि क्या होगा। अभी इस पेंसिल को मैं मारक बना सकता हूं, इससे आपकी आंख फोड़ सकता हूं। यह पेंसिल अभी मारक हो जायेगी। मेरा मतलब समझे न ! कोई यंत्र न तो मारक होता है, न तारक होता है। आदमी की बुद्धि यंत्र का उपयोग करती है। और आदमी मारक हो तो कोई भी यंत्र मारक है-- कोई भी यंत्र। आप यह फोन उठाकर किसी की जान ले सकते हैं, खोंपड़ी फोड़ सकते हैं। यह सवाल नहीं है। यह सब जो तरकीबें हैं न। यह यंत्रों से बचाव के लिए वे हिसाब बांधते हैं कि इतने यंत्रों से बचें, इतने यंत्रों से बचें। एटम बम भी मारक नहीं है। वह किनके हाथ में है, यह सवाल है।

और मेरी अपनी दृष्टि यह है कि कोई यंत्र मारक नहीं है। यंत्र कैसे मारक हो सकते हैं, जब तक आप नहीं मारेंगे ? सारे यंत्र साधक हैं। **आदमी को हमें बनाने की जरूरत है; आदमी को विकसित करने की जरूरत** है। उसकी शांति और प्रेम को बढ़ाने की जरूरत है, ताकि वह यंत्रों का मारक उपयोग न करे। और नहीं तो संन्यासी जो डण्डा लेकर चलता है, उससे भी वह आपकी खोंपड़ी फोड़ सकता है। यह सवाल नहीं है। यह जो विनोबा जी कहते हैं कि मारक और तारक क्या है, वे कुछ मतलब की बातें नहीं हैं। कुछ मारक-वारक नहीं है।

प्रश्नकर्ता : (अस्पष्ट)

भगवान् रजनीश : शोषण की शक्ति आदमी में है, यंत्रों में नहीं है। यंत्र में नहीं है शोषण की शक्ति। यह भी विनोबा और गांधी गलत बातें कहते हैं। किसी यंत्र में शोषण की शक्ति नहीं है। शोषण की शक्ति आदमी में है। वह यंत्र अगर समाजवादी समाज हो तो शोषक नहीं होगा,और पूंजीवादी समाज हो तो शोषक होगा। तो वे पूंजीवादी समाज को मिटाना नहीं चाहते हैं, यंत्र को मिटाना चाहते हैं ? यह फिर बेईमानी की बातें हैं। अगर यंत्र शोषक है तो इसका मतलब है कि वह शोषकों के हाथ में है। तो शोषकों के हाथ से तो छीनना नहीं है, उनको तो ट्रस्टी बनाना है और यंत्र को मिटाना है। बड़ी अजीब बातें कर रहे हैं आप। यंत्र रूस में शोषक नहीं है, हिन्दुस्तान में शोषक है। तो

हिंदुस्तान में यंत्र कोई खास ढंग का होता है ? यंत्र शोषक रहेगा, अगर शोषकों के हाथ में है। यंत्र शोषकों के हाथ में नहीं रहना चाहिए, समाज के हाथ में रहना चाहिए। मगर गांधी और विनोबा इसके लिए भी राजी नहीं होते कि यंत्र समाज के हाथ में रहे। वे इसके लिए राजी हैं कि यन्त्र ही न रह जाए। यह बड़ी अजीब बात है।

सांस्कृतिक उड़ान के लिए समृद्धि जरूरी

प्रश्नकर्ता : (अस्पष्ट)

भगवान् रजनीश : आप मेरी बात समझे कि नहीं ? मेरा कहना यह है कि आदमी के पास जिन्दगी बहुत छोटी है और बेवकूफियों में गंवाने के लिए नहीं है। वह अपना मकान भी बनाये, वह अपना जूता भी बनाये, वह अपना कपड़ा भी बनाये, ये पागलपन की बातें हैं। आदमी के पास जिन्दगी इतनी थोड़ी है कि इस थोड़ी जिन्दगी को हमें लम्बा करना चाहिए। अगर एक आदमी पचास-साठ साल जीता है तो बीस साल तो सोने में निकल जाते हैं। बीस साल उसके दाढ़ी बनाने, कपड़ा धोने, जूता साफ करने और बाजार जाने में निकल जाते हैं। बीस साल बचते हैं केवल, दफ्तर में नौकरी करता है, शत्रुओं से लड़ता है, मित्रों से पूछ-तांछ करता है, सोसाइटियां बनाता है। आदमी के पास वक्त नहीं बचता है कि ऊंची उड़ाने ले सके।

आपको पता है कि दुनिया में जो भी समृद्ध घर हैं, या समृद्ध परिवार हैं, उन्होंने ऊंची उड़ानें लीं। बुद्ध कोई भिखमंगे के घर में पैदा नहीं होते हैं। और न महावीर भिखमंगे के घर में पैदा होते हैं। ये सारे के सारे करोड़पतियों के घर में पैदा होते हैं, जहां लक्जरी की, विलास की पूरी व्यवस्था है। तब मन को उड़ने का मौका है। आप पक्का समझ लीजिये कि अमरीका में वज्ञानिक पैदा होगा। विचारक पैदा होगा। वह रूस में पैदा होगा। यहां कहां से पैदा होगा ? यहां रोटी खाने की तकलीफ है। समाज एफ्लुएंट होता है तो माइंड ऊपर जाता है। और गांधी-विनोबा की बात आप मान लें तो आदमी जूते की कीलें ठोंकता, साबुन बनाता और चर्खा चलाता रह जाएगा। इससे ऊपर नहीं जा सकता।

प्रश्नकर्ता : (अस्पष्ट)

भगवान् रजनीश : मेरा कहना यह है कि समाज का जितना उत्पादन है, वह सारा का सारा उत्पादन धीरे-धीरे ऑटोमेटिक टेक्नोलॉजी के हाथ में चला जाना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : (अस्पष्ट)

भगवान् रजनीश : बेकारी बढ़ेगी, अगर पूंजीवादी समाज रहेगा। अगर समाज पूंजीवादी है तो यंत्र के बढ़ने से बेकारी बढ़ेगी। अगर समाज समाजवादी है तो यंत्र के बढ़ने से आदमी को समय की सुविधा बढ़ेगी, बेकारी नहीं बढ़ेगी। जो आदमी आठ घण्टे काम करता है, वह छः घण्टे करेगा, चार घण्टे करेगा। तीन घण्टे करेगा। लेकिन अगर पूंजीवादी समाज है, तो यंत्र काम कर देगा कि दस आदमियों को बेकार कर देंगे और एक ही आदमी से काम चल जायेगा। अगर समाजवादी समाज है तो जितना काम दस आदमी करते थे, वह काम दस, करेंगे, आदमी ही ही लेकिन कल आठ-आठ घंटे करते थे, आज दो-दो घंटे करेंगे। तो समाज बदलना चाहिए, यंत्र नहीं। यंत्र तो समाज के लिए बड़ा हितकारी है। हमें भी तकलीफ हो रही है, जैसे आपके यहां उपद्रव चलता है कि कोई मिल में अगर कम्पूटर लगाना है, फलां करना है या इंश्योरेंश वाले लाना चाहते हैं तो हमको तकलीफ होती है। वह तकलीफ पूंजीवादी समाज की है, कम्पूटर की नहीं है वह तकलीफ। कम्पूटर लगता है तो काम हल्का हो जायेगा, कम हो जायेगा और आदमी के पास सुविधा बचेगी कि कुछ ज्ञान सीखे, कुछ खोजे, कुछ ध्यान करे, कुछ और करे, कुछ उसको सुविधा हो कि संगीत ही सीखे।

आप एक बात ध्यान में रखिये कि आदमी जो काम भी रोटी कमाने के लिए करता है, वह काम कभी आनन्दपूर्ण नहीं हो सकता। चाहे कोई विनोबा समझायें, दुनिया में कोई समझायें, रोटी कमाने वाला काम कभी भीं आनन्दपूर्ण नहीं हो सकता। जो काम आदमी हॉबी की तरह, सुखकी तरह करता है, वह आनन्दपूर्ण हो सकता है। एक आदमी सितार बजाये खुद ही तो एक बात है, और आप किसी से दो घण्टे की नौकरी देकर सितार बजवायें, बिल्कुल बात दूसरी हो जायेगी। बिल्कुल बात दूसरी

हो गयी। **आदमी की जिन्दगी में उतना ही आनन्द बढ़ता है, जितना वह अपनी मौज से कुछ कर सके।** और मौज से कर सके, इसके लिए जरूरी है कि दुनिया म यांत्रिकता का अधिकतम विस्तार हो।

लेकिन यांत्रिकता खतरनाक सिद्ध होगी पूंजीवाद के लिए। पूंजीवाद में यांत्रिकता बढ़ेगी तो बेकारी बढ़ेगी। तो क्रान्ति की संभावना बढ़ती है। और इसलिए मैं कहता हूं, गांधी-विनोबा की बात पूंजीवाद को बचाने के लिए सबसे कारगर तरकीब है। अगर समाज को पुराने यंत्रों पर ले जाया जा सके तो समाज पूंजीवाद के भी पीछे लौट जायेगा।

समाजवाद पूंजीवाद के आगे की मंजिल है। पीछे की मंजिल नहीं है वह। जब तक केन्द्रित उद्योग न हों, पूंजीवाद पैदा नहीं होता है। **और पूंजीवाद पैदा न हो तो समाजवाद भी नहीं आ सकता।** अगर चर्खा और यह सब मान लिया जाए, हालांकि कोई मानेगा नहीं, न कोई मानता है, तो समाज की स्थिति पूंजीवाद से पिछड़ी स्थिति हो जायेगी।

और अगर एक-एक आदमी चर्खा कातने लगे तो यह जो प्रोलिटरियट का, मजदूर का जो वर्ग है, वह खत्म हो जायेगा। वह तो इसलिए पैदा हुआ है कि एक केन्द्रित उद्योग पैदा हुआ है। एक इण्डस्ट्री है, उसमें दस हजार मजदूर इकट्ठे हैं। वहाँ दस हजार मजदूर की ताकत हो गयी है – इकट्ठी। अगर घर-घर में चर्खा हो जाए तो मजदूर की ताकत कम हो जायेगी, उसका इकट्ठा होना खत्म हो जायेगा। वह कहीं रह नहीं जायेगा। और अगर हम इस तरह सारे उद्योग को छोटे-छोटे टुकडों में तोड़ दें तो पूंजीवाद की जो व्यवस्था है, वह पीछे लौट जायेगी। तब सामंतवाद हो जाएगा। उस सामन्तवादी व्यवस्था से समाजवाद कभी नहीं आ सकता।

तो एक लिहाज से विनोबा से भी ज्यादा बिड़ला समाजवाद के लाने में सहयोगी हैं। अगर समझा जाए ठीक से तो विनोबा और गांधी से ज्यादा बिड़ला और डालमिया और साहू सहयोगी हैं समाजवाद के लाने में। इसलिए जितना पूंजीवाद तीव्र होता है, जितना यन्त्र बढ़ता है, बेकारी बढ़ती है, नीचे का मजदूर बढ़ता है, उतनी क्रान्ति होने की संभावना रहती है। और वह क्रान्ति आयेगी। तो या तो यन्त्र कम करने

पड़ेंगे या क्रान्ति लानी पड़ेगी । क्योंकि बढ़ते हुए यन्त्र समाज को बदलने के लिए मजबूर करते हैं । और आपको एक व्यवस्था लानी पड़ेगी, जिसमें कि यन्त्र आदमी को बेकार न कर सके, बल्कि आदमी को समय दे ।

तो आप ठीक कहते हैं । अभी तो बेकारी बढ़ती है । लेकिन हमको समाज बदलना चाहिए, यन्त्र नहीं रोकना चाहिए । समाज बदलना चाहिए । बीमार को मार नहीं डालना चाहिए, बीमारी बदलनी है । यह तो बात ठीक है कि बीमार मर जाए तो बीमारी अपने आप खत्म हो जाती है । लेकिन इससे बीमार को मार डालने की कोशिश नहीं होनी चाहिए । यन्त्र को नहीं मार डालना है । यंत्र के कारण जो बीमारी पैदा हो रही है, वह यन्त्र के कारण नहीं हो रही है, वह पूंजीवाद की वजह से पैदा हो रही है । यानी मैं यह कहना चाहता हूं कि यन्त्र न तो खराब है, न मारक है, न विध्वंसक है । यंत्र का हम कैसा उपयोग करें और कैसा समाज हो, इस पर निर्भर करेगा सब कुछ । यन्त्र तो बढ़ते जाना चाहिए, **समाज को बदलना चाहिए** । समाज को बदलने से जो डरते हैं, वे कहेंगे यन्त्र को ही मत लाओ बीचे में । क्योंकि वह आएगा तो बदलाहट जरूरी हो जाएगी ।

■■
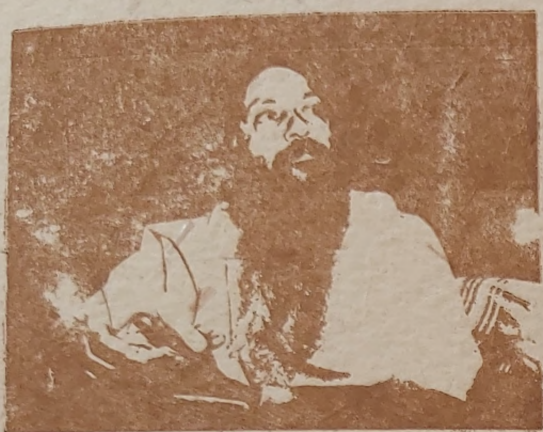
भगवान् श्री रजनीश

रजनीश उन विरल बिभूतियों में हैं जिन्हें किसी कोटि या कटेगरी में बांधना असंभव-सा है। हिन्दू मनीषा ने उनके लिए सर्व-तंत्र-स्वतंत्र की संज्ञा चुनी, और इसीलिए हम उन्हें भगवान् कहते हैं।

रजनीश परम प्रज्ञा को उपलब्ध संत हैं और क्रान्त-दर्शी ऋषि। और लगता है कि सत्य की गंगोत्री में ही उनका आवास है।

रजनीश का समस्त जीवन एक लयबद्ध संगीत है। वे वही कहते और करते हैं, जिसे वे जीते ही हैं। इसलिए उनकी वाणी में वह प्रखरता और प्रसाद है, जो उपनिषदों की याद दिलाती है।

भगवान् रजनीश मुख्यत: धर्म के हैं, स्वयं धर्म ही हैं। लेकिन उनका धर्म आकाश की तरह सर्वग्राही है, जहां काम (सेक्स) और अर्थ और मोक्ष, सब सम्मिलित हैं।

यही कारण भी है कि रजनीश को समझने में उनके हम सम-सामयिकों को इतनी कठिनाई होती है। और यहीं वह खतरा भी है कि जीते-जी उन्हें हम चूक सकते हैं—जिसका प्रायश्चित मरणोपरान्त पूजा है।